शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 105 (मूल क्रमांक 162)
जनवरी-फरवरी 2026 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 105 (मूल क्रमांक 162)
जनवरी-फरवरी 2026 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	600.00	1500.00	10,000.00

मुखपृष्ठ: ***मादा एशियन कोयल।*** मादा एशियन कोयल समेत कुछ पक्षी अपने अण्डे मेज़बान पक्षियों के घोंसलों में देकर परवरिश की ज़िम्मेदारी उन पर छोड़ देते हैं। इस परजीविता के कारण इन पक्षियों में ऊर्जा की बचत होती है जिससे वे अधिक अण्डे दे पाते हैं। यदि कुछ बच्चे मर भी जाते हैं या मेज़बान द्वारा कुछ अण्डे नष्ट कर दिए जाते हैं तो भी ज़्यादा नुकसान नहीं होता और पर्याप्त बच्चे जीवित रह पाते हैं। लेकिन यह व्यवहार आलस्य है या जैव-विकास की रणनीति? ऐसी ही कुछ रोचक जानकारियों के लिए पढ़िए घोंसला परजीविता पर केन्द्रित इस लेख को पृष्ठ 5 पर। फोटो - प्रवीण कवळे।

कवर 3: ***मिट्टी में बिल बनाता केंचुआ।*** केंचुए मिट्टी खाते हुए सुरंग बनाते जाते हैं और मिट्टी में बिल बनाकर रहते हैं। वे नमी वाली, अँधेरी जगह तो पसन्द करते हैं लेकिन बारिश में बिल से बाहर निकल आते हैं। ऐसा क्यों? केंचुए के बिल और उनकी अन्य विशेषताओं के बारे में जानने के लिए पढ़िए लेख, पृष्ठ 86 पर।

पिछला आवरण: *रीड वार्ब्लर (reed warbler)* के घोंसले में उसके अपने तीन अण्डे और एक पहाड़ी कोयल का अण्डा (नीचे दाईं ओर)। मेज़बान रीड वार्ब्लर के खुद के अण्डों और परजीवी पहाड़ी कोयल द्वारा दिए गए अण्डों के रंग और धब्बे एक-जैसे होते हैं। यह मेज़बान को ठगने के लिए ज़रूरी है। तो क्या पहाड़ी कोयल मेज़बान के अनुसार अपने अण्डों का रंग बदल सकती है? जानने के लिए पढ़िए लेख, पृष्ठ 5 पर। फोटो - एन. डेविस।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 3 - https://envii.co.uk/blogs/news/the-benefits-of-earthworms-in-gardens
कवर 4 - https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S000334721300016X

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

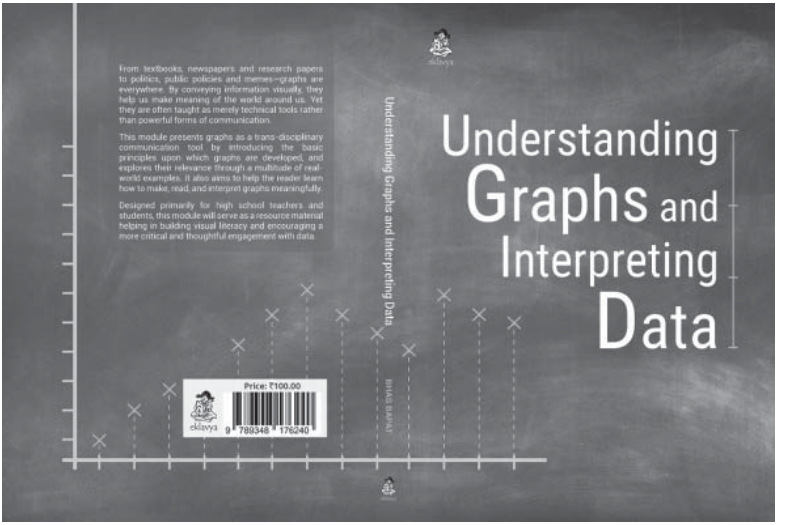

GRAPH MODULE

Graph Speaks.
Do We Listen Carefully?

Price: ₹ 100/-

From newsrooms to WhatsApp forwards, graphs shape how we understand the world. This module helps teachers and students read, question, and create graphs as powerful tools of communication—not just technical charts.

A practical resource for building visual literacy and critical data thinking in high school classrooms.

---

eklavya

To place the order-
EKLAVYA FOUNDATION
Jamnalal Bajaj Parisar, Jatkhedi, Bhopal,
Madhya Pradesh, 462026, India.
Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in
Website: www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

सांख्यिकी की एक महत्वपूर्ण तकनीक का...

बीयर के किसी कारखाने में, कोई भी चार बोतलें लेकर क्या यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि बाकी की बोतलों में बीयर की गुणवत्ता कैसी होगी? वह अन्दाज़ा कितना सटीक होगा? पता लगाने के लिए हमें करना होगा 'टी-टेस्ट'। बीयर की गुणवत्ता कायम रखने के उद्देश्य से उभरी सांख्यिकी की यह अहम तकनीक आज चिकित्सा, औद्योगिक निर्माण व कई शोधकार्यों में अपनाई जाती है, और इस तरह, इस दुनिया और समाज को आकार देने में किरदार निभाती है। इसके बारे में और जानने के लिए पढ़िए सुशील जोशी और भास बापट का यह लेख। वाकई, वैज्ञानिक खोज के रास्ते बड़े बेतरतीब होते हैं!

21

मिट्टी खाकर बिल बनाने वाला केंचुआ

केंचुए का शरीर कितना साधारण-सा लगता है न! मगर इस साधारण-से जीव का जीवन अनेक विचित्र खूबियों से भरा हुआ है। ये शर्मीले जीव टनों-टन मिट्टी उलट देते हैं, और धूप 'देखकर' सिकुड़ जाते हैं। छिपकली तक चबा जाती है इन्हें, और ये हैं कि मिट्टी चबाते हैं! वैसे 'चबाते' भी कहाँ हैं, दाँत और जबड़े जो नहीं हैं जजमान के पास! इन गिलगिले प्राणी की कारस्तानी पेश करते हैं कालू राम शर्मा अपने इस 'अब-तक-अप्रकाशित' लेख में।

86

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-105 (मूल अंक-162), जनवरी-फरवरी 2026

इस अंक में

05 | कोयल के अण्डे, कौओं के घोंसले और बहुत कुछ
संकेत राउत

16 | हिन्दसे
आमोद कारखानीस

21 | सांख्यिकी की एक महत्वपूर्ण तकनीक का आविष्कार...
सुशील जोशी, भास बापट व हिमांशु श्रीवास्तव

34 | मिट्टी से मिट्टी तक: आवां का तिलस्म
अनिल सिंह

41 | नाटक इंडिया कम्पनी
अमित और जयश्री

57 | पुराने समय के दो शहर
प्रकाश कान्त

64 | ईश्वर की कहानियाँ
विष्णु नागर

66 | आलू की आँख: भाग 1
राजेश जोशी

76 | इंडेक्स अंक 157-162

83 | नमकीन भोजन के बाद हमें ज़्यादा प्यास क्यों लगती है?
सवालीराम

86 | मिट्टी खाकर बिल बनाने वाला केंचुआ
कालू राम शर्मा

आगामी प्रकाशन

शिक्षा और ज़िन्दगी में रंगमंच

लेखन: वॉल्टर पीटर

मूल्य: ₹120

रंगमंच के क्षेत्र में पिछले तीन दशक से सक्रिय कार्यकर्ता वॉल्टर पीटर द्वारा लिखी गई यह किताब शिक्षा और ज़िन्दगी में रंगमंच की अहमियत को दर्शाने का एक अलग नज़रिया पेश करती है।

इसमें दी गई सौ से भी ज़्यादा गतिविधियों को कक्षा में, थिएटर वर्कशॉप में या सामुदायिक काम वगैरह में बच्चों या बड़ों के साथ बहुत ही कम संसाधनों के साथ आज़माया जा सकता है।

आज ही अपनी प्रति बुक करें:

एकलव्य

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

कोयल के अण्डे, कौओं के घोंसले और बहुत कुछ

संकेत राउत

मादा एशियन कोयल। फोटो - प्रवीण कवळे

मार्च से जून के दौरान आप कोयल (Asian koel) के मधुर संगीत को भरपूर सुन पाते होंगे। वैसे कोयल एक और वजह से भी मशहूर है। आपको पता ही होगा कि कोयल अपने अण्डे देने के लिए अन्य पक्षियों के घोंसलों को निशाना बनाती है। उनमें से एक है कौआ जिसे 'हाउस क्रो' कहा जाता है। एक बार कौए के घोंसले में अण्डे देने के बाद, कोयल के अण्डे सेने से लेकर चूज़ों की परवरिश तक, सब कुछ कौआ करता है। अपने बच्चों की परवरिश के लिए किसी अन्य प्रजाति पर निर्भर रहने के इस बर्ताव को जीव-जगत में परजीवी व्यवहार (parasitic behaviour) या घोंसला परजीविता (brood parasitism) कहा जाता है। परजीवी प्रजाति अपने बच्चों की परवरिश हेतु जिस प्रजाति पर निर्भर रहती है, उस प्रजाति को मेज़बान प्रजाति कहा जाता है। कोयल एक परजीवी प्रजाति है जिसकी मेज़बानी कौआ करता है। चूँकि मेज़बान इतनी सेवाएँ देने के

लिए तत्पर रहता है, इस वजह से अपने बच्चों के लिए परजीवी पक्षी का उत्तरदायित्व अण्डे देने के साथ ही खत्म हो जाता है।

कई बार कोयल को घोंसला न बनाने की वजह से आलसी भी कहा जाता है। लेकिन क्या वाकई कोयल को आलसी कहना चाहिए? कोयल के इस व्यवहार पर ऐसे कई बुनियादी सवाल *संदर्भ* के अंक-156 (जनवरी-फरवरी, 2025) में प्रकाशित लेख 'कौओं के घोंसले और कोयल के अण्डे' और 'कौआ और कोयल: संघर्ष या सहयोग' में उठाए गए थे। उनमें से कुछ के जवाब उन लेखों में देने की कोशिश भी की गई थी। हालाँकि, कुछ के जवाब बच गए थे जिन पर मैं इस लेख में चर्चा करने की कोशिश कर रहा हूँ। इस लेख में कोयल के साथ-साथ पहाड़ी कोयल (common cuckoo) का सन्दर्भ भी लिया गया है जो सर्दी के मौसम के दौरान यूरोप से भारत आती है। (आम तौर पर इसे पहाड़ी कोयल कहा जाता है लेकिन यह भारत के सभी इलाकों में देखी जा सकती है।) यह पक्षी भी घोंसला परजीवी है और इस पर भी काफी अध्ययन किया जा चुका है। इस लेख की शुरुआत हम कुकू के कुल (Cuculidae) की जानकारी से करते हैं।

सभी कुकू कुल परजीवी नहीं

दुनियाभर में कुकू की कुल 150 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से लगभग 22 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। इनमें से एक प्रजाति कोयल है। कोयल घोंसला परजीवी है, यह बात हम जानते हैं लेकिन सभी कुकू प्रजातियाँ परजीवी नहीं होतीं। भारत में पाया जाने वाला भारद्वाज (coucal) भी कुकू कुल में शुमार है लेकिन यह प्रजाति घोंसला परजीवी नहीं है। दूसरी तरफ, यह भी समझने की ज़रूरत है कि पक्षियों में सिर्फ कुकू प्रजाति ही घोंसला परजीवी नहीं होती। दुनियाभर में लगभग 234 पक्षी प्रजातियाँ घोंसला परजीवी हैं। कुकू के साथ-साथ फिंच, हनीगाइड और बतख की एक प्रजाति (black-headed duck) भी इन परजीवियों की सूची में शामिल हैं।

कोयल के मेज़बान

हमने देखा है कि घोंसला परजीवी प्रजाति अपने बच्चों की परवरिश के लिए मेज़बान प्रजाति पर निर्भर रहती है। भारत में कोयल के लिए वो जाना-पहचाना मेज़बान कौआ है। लेकिन दुनियाभर के विभिन्न परजीवी पक्षी अपने बच्चों की परवरिश के लिए अलग-अलग प्रजातियों पर निर्भर होते हैं। वैसे परिस्थिति के अनुसार, एक परजीवी प्रजाति के लिए एक से ज़्यादा मेज़बान प्रजातियाँ भी हो सकती हैं। भारत में कोयल अपने बच्चों की परवरिश के लिए ज़्यादातर कौओं (house crow) को चुनती हैं

फोटो - प्रवीण कवळे

चित्र-1: घरू कौआ (house crow)

लेकिन कभी-कभार जंगली कौओं (large-billed crow) को भी मेज़बान के तौर पर चुन लिया जाता है। इन तीनों प्रजातियों का प्रजनन काल मार्च से जून तक का होता है और मेज़बान प्रजाति चुनने का यह एक प्रमुख आधार बनता है।

कोयल भारत के बाहर भी पाई जाती हैं और मज़ेदार बात यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप की विभिन्न जगहों पर कोयल के मेज़बान भी फर्क होते हैं। बांग्लादेश में कोयल अपने मेज़बान के तौर पर कजला लटोरा (long-tailed shrike) को सबसे ज़्यादा चुनती है। इस क्रम में मैना (common myna) दूसरे पायदान पर है और कौआ वहाँ तीसरी पसन्द बन जाता है। श्रीलंका में देखा गया है कि सन् 1880 के पहले तक कोयल जंगली कौए को मेज़बान के तौर पर चुनती थी लेकिन अब हाउस क्रो पर निर्भर है। मलय द्वीप समूह में कोयल पहले कौओं पर निर्भर हुआ करती थी लेकिन अब मैना को मेज़बानी के ज़्यादा मौके देती है! इसका मतलब यह हुआ कि परजीवी पक्षी हालात के मुताबिक मेज़बान प्रजाति के चयन में बदलाव भी कर सकते हैं। इसका एक अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि भारत में कोयल अपने बच्चों की परवरिश के लिए कौओं पर ज़्यादा निर्भर हैं। लेकिन आने वाले समय में हो सकता है कि कौओं की संख्या में कमी होने के कारण या किसी अन्य कारण से भी, कोयल मेज़बान के तौर पर किसी अन्य प्रजाति को चुनें।

कुछ अध्ययनों द्वारा शोधकर्ताओं को यह ज्ञात हुआ है कि कुकू कुल में घोंसला परजीविता का व्यवहार पहले से मौजूद नहीं था। यानी कुछ प्रजातियों में जैव-विकास के दौरान परजीविता का रास्ता विकसित हुआ है।

फोटो - प्रवीण कवळे

चित्र-2: *जंगली कौआ (large-billed crow)*

घोंसला परजीविता के नुकसान

जून के महिने में जब कोयल के बच्चे वयस्क अवस्था की दहलीज़ पर होते हैं तब कई लोगों ने कौए को कोयल के बच्चों पर हमला करते हुए देखा होगा। कौए जैसे मेज़बान अपने पर निर्भर परजीवी प्रजाति के साथ अक्सर आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। मेज़बान पक्षी कई बार परजीवी पक्षी को अण्डे देते वक्त मार भी देता है, या घोंसले में उनके द्वारा रखे गए अण्डों को नष्ट कर देता है। कुछ मेज़बान उनके घोंसले में पल रहे परजीवी चूज़ों को मौत की नींद भी सुला देते है। यहाँ तक कि परजीवी प्रजाति मेज़बान के घोंसले के पास ज़्यादा देर तक मण्डरा भी नहीं सकती। और इसीलिए परजीवी मादा को अण्डे देने का काम जल्द-से-जल्द निपटाना पड़ता है। पहाड़ी कोयल यह काम महज़ 10 से 15 सेकण्ड में पूरा कर देती है।

देखा जाए तो मेज़बान पर निर्भर रहने के काफी नुकसान हैं, फिर भी परजीवी पक्षी इस जोखिम को उठाते हैं क्योंकि परजीविता के कुछ फायदे भी हैं।

घोंसला परजीविता के फायदे

चूज़ों के भरण-पोषण और सुरक्षा में काफी ऊर्जा खर्च होती है। चूँकि परजीवी पक्षी को ये सब नहीं करना पड़ता इसलिए उनकी बहुत सारी ऊर्जा बचती है जिसे वे ज़्यादा अण्डे देने में खर्च करते हैं। एक प्रजनन काल में कौआ तीन से पाँच अण्डे देता है, वहीं पहाड़ी कोयल 12 से 22 अण्डे तक दे सकती है। यानी यदि

कुछ बच्चे मर भी जाते हैं या मेज़बान द्वारा कुछ अण्डे नष्ट कर दिए जाते हैं तो भी ज़्यादा नुकसान नहीं होता और पर्याप्त बच्चे जीवित रह पाते हैं। इस तरह परजीवी पक्षी को फायदा होता हुआ नज़र आता है।

लेकिन परजीवी के बच्चे बड़े करना, मेज़बान के लिए तो नुकसान का ही काम है। तो भला मेज़बान यह नुकसान क्यों उठाते हैं? उन्हें यह करना पड़ता है क्योंकि परजीवी उन्हें ठगते हैं। तो चलिए, एक नज़र हम इस धोखाधड़ी पर भी डालते हैं।

अण्डों-अण्डों में फर्क कितना?

परजीवी पक्षी अपने अण्डे मेज़बान के घोंसले में रखता है इसलिए सवाल यह उठता है कि क्या मेज़बान खुद के और परजीवी के अण्डे के बीच में फर्क नहीं कर पाता? इसके जवाब की तह में जाने के लिए पहले हमें अण्डों के रंग के बारे में जानना होगा। कौए और कोयल के अण्डे दिखने में बहुत कुछ एक-जैसे होते हैं। जैसे धब्बे कौए के अण्डे पर होते हैं वैसे ही धब्बे कोयल के अण्डों पर भी होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कोयल के अण्डे कौओं के अण्डों की लगभग नकल होते हैं जिसकी वजह से कौआ ठगा जाता है।

लेकिन कोयल के मुकाबले पहाड़ी कोयल का काम ज़्यादा मुश्किल दिखाई देता है क्योंकि उसके मेज़बान और उनके अण्डों के रंग में विविधता है। जैसे एक मेज़बान रीड वार्ब्लर (reed warbler) के अण्डे नीले और दूसरे मेज़बान मिडो पिपिट (meadow pipit) के अण्डे भूरे रंग के होते हैं। लेकिन इनके घोंसलों में रखे इनके खुद के अण्डों और पहाड़ी कोयल द्वारा दिए गए अण्डों के रंग और धब्बे एक-जैसे होते हैं। यह मेज़बान को ठगने के लिए ज़रूरी है। तो क्या पहाड़ी कोयल मेज़बान के अनुसार अपने अण्डों का रंग बदल सकती है?

जी नहीं। पहाड़ी कोयल उसी मेज़बान प्रजाति को अपना निशाना बनाती है जिसके अण्डों का रंग उसके खुद के अण्डों के रंग से मेल खाता हो। अध्ययन में यह पाया गया है कि अलग-अलग मेज़बान को चुनने वाली पहाड़ी कोयल, दरअसल अलग-अलग जाति या नस्ल की होती हैं, यानी एक ही प्रजाति के अन्दर विविधता! शोधकर्ता अल्फ्रेड न्यूटन ने इन नस्लों को गीनेट्स (genets) नाम दिया है। मतलब, अलग-अलग गीनेट्स की पहाड़ी कोयल अलग-अलग मेज़बान के घर में अण्डे देती हैं।

लेकिन यहाँ एक दिक्कत दिखाई देती है। पहाड़ी कोयल के एक से अधिक मेज़बान हैं, तो उसे कैसे पता चलता है कि उसके गीनेट के अनुसार किस मेज़बान के अण्डे के साथ उसके अण्डों का रंग मिलता-जुलता होगा? इस पर खोज जारी है लेकिन कुछ पक्षी-विशेषज्ञ मानते हैं कि जिस

फोटो - सुशान्त पवार

चित्र-3: *पहाड़ी कोयल*

मेज़बान प्रजाति ने मादा कोयल का भरण-पोषण किया था, उस प्रजाति की याद मादा कोयल को वयस्क अवस्था में भी बनी रहती होगी और आगे चलकर उसी मेज़बान प्रजाति को मादा कोयल मेज़बान बनाती होगी। यानी जो मादा कोयल रीड वार्ब्लर के घोंसले में पली-बढ़ी होगी, वह रीड वार्ब्लर को ही मेज़बान बनाएगी।

आपके मन में शायद यह सवाल भी उठ सकता है कि अण्डों के रंग निर्धारण में नर कोयल की भी कोई भूमिका होती है या नहीं? यदि मादा के साथ मिलन करने वाला नर अलग गीनेट का हो तो क्या उसका असर अण्डे के रंग पर भी पड़ेगा? विविध अध्ययनों से यह पता चलता है कि पहाड़ी कोयल में अण्डे के रंग निर्धारित करने वाले जीन्स सिर्फ मादा के पास होते हैं। इसका मतलब है कि मादा का मिलन किसी भी गीनेट के नर के साथ हो, अण्डों का रंग मादा के गीनेट का ही रहेगा। मादा किसी भी गीनेट के नर के साथ मिलन कर सकती है, और बाद में वह अपनी याददाश्त के ज़रिए सही मेज़बान के घोंसले तक पहुँच जाती है।

मेज़बान का चुनाव

अगर आपको लगता है कि मेज़बान का घोंसला चुनकर, उसमें अण्डा देना आसान काम है तो आप गलत हैं क्योंकि मेज़बान कई दफा घोंसला परजीवी के साथ आक्रामक

व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। शिकारी पक्षी के शरीर पर बने पैटर्न (plumage mimicry) की वजह से कुछ परजीवी पक्षियों को काफी हद तक सुरक्षा मिलती है। लेकिन हर बार यह सुरक्षा की गारंटी नहीं है। इसलिए मेज़बान घोंसलों में अण्डे रखने का काम चुपचाप और जल्दी से करना पड़ता है।

संदर्भ अंक-154 (सितम्बर-अक्टूबर, 2024) में प्रकाशित लेख 'पक्षियों की मिमिक्री' में हमने यह जाना था कि शिकारी पक्षियों का पैटर्न कैसे कोयल को झाड़ियों के बीच छुपने में मददगार साबित होता है। मादा कोयल छुपकर मेज़बान और उसके घोंसले पर पैनी नज़र रखती है और सही समय आते ही जल्दी-से अण्डे देकर उड़ जाती है। लेकिन कोयल को अण्डे देने के लिए सही घोंसला और सही वक्त चुनना पड़ता है।

कोयल को अण्डे उसी घोंसले में देने होते हैं जहाँ पहले से मेज़बान के अण्डे मौजूद हों। आम तौर पर संख्या से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता लेकिन यदि मेज़बान ने अण्डे देना शुरू नहीं किया हो तो वह अपने घोंसले में दिए गए अन्य पक्षियों के अण्डे नष्ट कर देता है। इसलिए जिस घोंसले में अण्डे पहले से मौजूद हों, कोयल वहीं अपने अण्डे देती है। घोंसले में अण्डों की संख्या कम-ज़्यादा होने से मेज़बान को शायद फर्क नहीं पड़ता।

मेज़बान के घोंसले में यदि कोयल के चूज़े, मेज़बान के चूज़ों से पहले जन्म ले लेते हैं तो इस स्थिति में कोयल के चूज़ों के ज़िन्दा रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। मेज़बान के चूज़ों की हलचल से कोयल के अण्डे नष्ट हो सकते हैं या घोंसले में पहले से चूज़ों के होने की वजह से कोयल के अण्डे को मेज़बान अनदेखा कर सकता है। अक्सर देखा जाता है कि देर से पैदा होने वाले चूज़े खाने की होड़ में अपने भाई-बन्धुओं से पिछड़कर, भूख से मारे जाते हैं। इसलिए कोयल को अण्डे देने के लिए सही समय चुनना बेहद ज़रूरी होता है ताकि मेज़बान के चूज़ों से पहले, कोयल के चूज़े अण्डों से बाहर निकल आएँ।

लेकिन जल्दी अण्डे देने में भी एक दिक्कत है। पहाड़ी कोयल जैसे परजीवी उन पक्षी प्रजातियों में शामिल हैं जिनके अण्डे में भ्रूण का विकास अण्डे के पेट में होने के समय ही शुरू हो जाता है। इस प्रक्रिया को इंटरनल इंक्यूबेशन कहा जाता है। यह प्रक्रिया जिन पक्षियों में होती है, उनके अण्डों से चूज़ों को बाहर आने में कम समय लगता है। लेकिन यदि ये अण्डे समय रहते घोंसलों में न रखे जाएँ तो अण्डे के भीतर पनप रहे भ्रूण के विकास पर विपरीत असर पड़ सकता है। इसके अलावा, पक्षी अपने सभी अण्डे देने के बाद ही उन्हें सेना शुरू करते हैं। यदि वे ऐसा नहीं

करेंगे तो चूज़े एक ही समय पर अण्डों से बाहर नहीं आएँगे। अक्सर एक दिन के अन्तर में सभी चूज़े अण्डों से बाहर आ जाते हैं। कोयल को यह पूरा हिसाब लगाकर मेज़बान के घोंसले में अण्डे देने पड़ते हैं ताकि अण्डे देने के बाद मेज़बान द्वारा सेने की प्रक्रिया में ज़्यादा समय न लगे।

विभिन्न तरह के चूज़े

मैं यहाँ पहाड़ी कोयल जैसे परजीवी के चूज़ों की दिल दहला देने वाली एक बात साझा करना चाहता हूँ। ये चूज़े जन्म के तुरन्त बाद कोहराम मचा देते हैं। आम तौर पर सटीक समय पर अण्डे देने और इंटरनल इंक्यूबेशन की वजह से कोयल के चूज़े मेज़बान के चूज़ों से पहले जन्म लेते हैं। जन्म के तुरन्त बाद ये चूज़े घोंसले में बचे अण्डे और अन्य चूज़ों को घोंसले से बाहर गिराकर, कत्ल-ए-आम मचा देते हैं। इस तरह मेज़बान द्वारा लाया गया सारा भोजन पहाड़ी कोयल के चूज़ों को मिल जाता है और वे तेज़ी-से बड़े हो जाते हैं।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि परजीवी पक्षियों में ऐसा बर्ताव सिर्फ कुकू कुल के पक्षी ही करते हों। भारत के हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली हनीगाइड (yellow-rumped honey-guide) का आकार कुल जमा गौरया (house sparrow) जितना होता है। हनीगाइड भी घोंसला परजीवी है और इसके मेज़बान ग्रीन-बैक्ड टिट्स (*Parus monticolus*) और ग्रेट बार्बेट्स (*Psilopogon virens*) हैं। हनीगाइड के चूज़ों की चोंच पर जन्म के समय नुकीले हुक जैसी संरचना होती है। हनीगाइड के चूज़े इसका इस्तेमाल घोंसले में मौजूद अण्डे नष्ट करने और अन्य चूज़ों को नोचकर मारने के लिए करते हैं। हर मौसम में मेज़बान के न जाने कितने अण्डे और चूज़े परजीवी चूज़ों के हमले के शिकार बनते हैं। दूसरी ओर, कौए के घोंसले

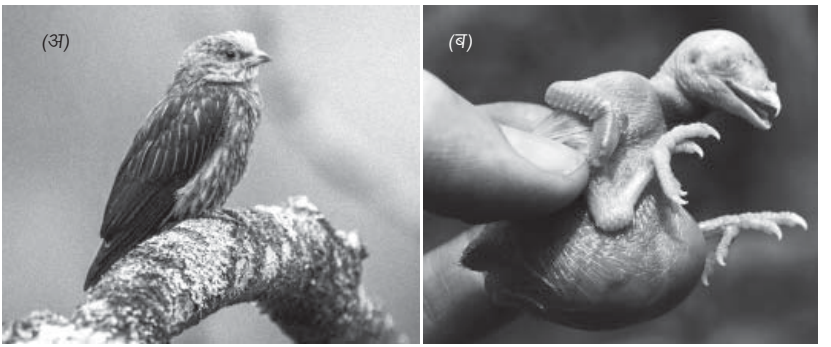

चित्र-4: *(अ) हनीगाइड; (ब) हनीगाइड के चूज़े की चोंच पर नुकीली संरचना*

चित्र-5: *ग्रेट बार्बेट*

चित्र-6: *ग्रीन-बैक्ड टिट*

में एशियन कोयल के एक से ज़्यादा बच्चे भी पल-बढ़ सकते हैं। पहाड़ी कोयल के चूज़ों की तरह, एशियन कोयल के चूज़ों को घोंसले से अण्डों और चूज़ों को बाहर फेंकते हुए नहीं देखा गया है। एशियन कोयल के चूज़े ऐसा क्यों करते हैं, इसके बारे में बस अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है।

पहाड़ी कोयल के मेज़बान रीड वार्ब्लर के घोंसले का आकार छोटा होता है। इसलिए परजीवी चूज़ों के लिए मेज़बान के अण्डे और चूज़े घोंसले से बाहर फेंकना थोड़ा आसान होता है। कौए का घोंसला तुलनात्मक रूप से बड़ा और गहरा होता है जिसमें से अण्डे व चूज़ों को बाहर फेंकना मुमकिन नहीं हो पाता। छोटे आकार के वार्ब्लर के लिए शायद एक ही बच्चे का भरण-पोषण कर पाना मुमकिन होता होगा। दूसरी ओर, सर्वभक्षी और बड़े आकार के कौए के लिए शायद एक से ज़्यादा बच्चों की परवरिश करना सम्भव हो पाता होगा।

बेगिंग कॉल की नकल

परवरिश के दौरान मेज़बान नर-मादा चूज़ों को लगातार भोजन लाकर खिलाते हैं। इस समय चूज़े आवाज़ निकालकर नर-मादा पंछी का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। आम तौर पर इसे 'बेगिंग कॉल' कहते हैं। ऐसा घोंसला जिसमें मेज़बान और परजीवी,

दोनों चूज़े मौजूद हों, वहाँ परजीवी चूज़े मेज़बान के चूज़ों की बेगिंग कॉल की नकल करते हैं। इस तरह बेगिंग कॉल की मदद से परजीवी ज़्यादा-से-ज़्यादा खाना हासिल करने में सफल हो जाते हैं और काफी तेज़ी-से वृद्धि करते हैं। इस प्रक्रिया में अन्य चूज़े कुपोषण के कारण मर भी सकते हैं।

कौओं की घटती संख्या

कई लोगों के मन में यह सवाल उठता है कि क्या घोंसला परजीविता की वजह से मेज़बान कौओं की संख्या कम होने का खतरा है या कौओं की संख्या कम हो रही है?

वैसे सरसरी तौर पर देखा जाए तो ऐसा नहीं है। अभी तक हमने देखा कि घोंसला परजीविता के बाद भी मेहमान और मेज़बान, दोनों के बच्चे बड़े हो जाते हैं। दरअसल, कौओं की संख्या में कमी का एक प्रमुख कारण मुझे रिहाईश का संकट (habitat loss) लगता है। जलवायु परिवर्तन, भोजन की उपलब्धता, कीटनाशकों का बढ़ता इस्तेमाल भी इसके सम्भव कारण हैं। यहाँ इस बात पर विचार करना भी उचित होगा कि घोंसला परजीविता तो सैंकड़ों बरस से चली आ रही है, उसके बावजूद मेज़बान की संख्या लगातार बनी हुई है और परजीवी पक्षी की संख्या में भी कोई बड़ा इज़ाफा नहीं हुआ है।

अन्त में, मैं बस इतना कहना चाहूँगा कि आलसी व परजीवी जैसे लेबल मनुष्य के लिए ही ठीक हैं। जैव-विकास की प्रक्रिया के दौरान कई प्रजातियों में अपने अस्तित्व को

संदर्भ के अंक-156 में प्रकाशित लेख (कौआ और कोयल: संघर्ष या सहयोग) में स्पेन में हुए शोधकार्य का सन्दर्भ देते हुए लेखक कालू राम शर्माजी ने यह बताया था कि जब 'ग्रेट स्पॉटेड कुकू' के बच्चे मेज़बान कैरिअन क्रो के घोंसले में पलते हैं तो कैसे मेज़बान को भी फायदा प्राप्त होता है। इस शोध के मुताबिक, परजीवी ग्रेट स्पॉटेड कुकू के बच्चे एक खास तरह की गन्ध छोड़ते हैं जो शिकारियों को दूर रखती है, और उसका फायदा कैरिअन क्रो को भी मिलता है। हालाँकि, यह कुछ दुर्लभ मामलों में से एक है। अक्सर, परजीवी के बच्चे मेज़बान के अण्डों और बच्चों को घोंसले से बाहर गिरा देते हैं, या उनका भोजन लेकर उन्हें भूखा मार देते हैं।

सामान्यतः, परजीवी प्रजनन (brood parasitism) मेज़बान प्रजातियों के लिए बिलकुल भी फायदेमन्द नहीं होता है। यहाँ परजीवी पक्षी जैसे कोयल बिना किसी मेहनत के अपनी अगली पीढ़ी पाल लेती है, जबकि मेज़बान पक्षी को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। मेज़बान पक्षी अपनी पूरी ऊर्जा और संसाधन एक ऐसे बच्चे को पालने में लगा देता है जो उसका अपना नहीं है, जिससे उसकी अपनी वंश वृद्धि रुक जाती है।

बनाए रखने के लिए विविध रणनीतियाँ और व्यवहार विकसित होते हैं। इसलिए जब हम इन्सानी सोच के लिहाज़ से किसी जीव को चतुर, मूर्ख, आलसी, चपल, क्रूर, दयालू जैसे लेबल लगाकर देखने की कोशिश करते हैं तो वह उचित नहीं है। उस व्यवहार या रणनीति का इन लेबल से कोई लेना-देना नहीं होता है।

मेज़बान के चूज़ों को मारने की वजह से हम कोयल को खलनायक की तरह देख सकते हैं, लेकिन जैव-विकास में यह सामान्य है। कई सारी पक्षी प्रजातियों में ज़िन्दा रहने के लिए चूज़े अपने ही सगे भाई-बहन को मारने से भी गुरेज़ नहीं करते। आखिरकार, यह जद्दोजहद अपना वंश आगे ले जाने एवं बढ़ाने के लिए है जिसे डार्विन ने अपने जैव-विकास के सिद्धान्त से समझाने की कोशिश की। मैं तो यही मानता हूँ कि कोयल का घोंसला परजीविता का रास्ता बेहद रोचक और सफल उदाहरण है।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

घोंसला परजीविता विषय पर *संदर्भ* में प्रकाशित अन्य लेख पढ़िए- कौओं के घोंसले और कोयल के अण्डे (अंक-156, जनवरी-फरवरी, 2025), कौआ और कोयल: संघर्ष या सहयोग (अंक-156, जनवरी-फरवरी, 2025), तुम सम्भालो मेरे बच्चों को (अंक-161, नवम्बर-दिसम्बर, 2025)।

इस लेख के लिए रेफ्रन्सिज़:

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Cuckoo
https://en.m.wikipedia.org/wiki/Brood_parasitism
https://en.m.wikipedia.org/wiki/Asian_koel
https://binocularbase.com/cuckoo-life-cycle/
https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S000334721300016X
https://en.m.wikipedia.org/wiki/Yellow-rumped_honeyguide
https://en.m.wikipedia.org/wiki/Common_cuckoo
https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC1690908/
https://ornithology.com/common-cuckoo/
https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S000334721300016X
https://www.datocms-assets.com/44232/1632764065-host-list-honeyguide-16sep2020-revised.pdf
https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S096098220701010X

हिन्दसे

आमोद कारखानीस

चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन

शेख साहब आज काफी खुश दिखाई दे रहे थे, वजह भी वाजिब थी। वे काफिले के साथ महीनों के थकाऊ सफर के बाद आज कॉन्स्टेंटिनोपल (आज का इस्तान्बूल) पहुँचे थे। उन दिनों भारत से इस्तान्बूल तक पहुँचना आसान काम नहीं था। भारत के विभिन्न शहरों को पार करने के बाद कन्दहार (अफगानिस्तान) के मुश्किल पहाड़ी इलाकों को लांघना होता था। पीठ पर सामान लादे हुए ऊँट एक-एक कदम बढ़ाते हुए, इस इलाके को पार करते थे। इन पहाड़ों को लांघते ही अरब इलाके का रेगिस्तान शुरू हो जाता था, जिसे पार करते समय – न खत्म होने वाले रेगिस्तान का एहसास बनता था। दिन में तपिश से भरा और रात में ठण्डक। मीलों तक पानी का नामोनिशाँ नहीं। इतने लम्बे सफर के दौरान साथ में कितना पानी लेकर चल सकते हैं?

शेख साहब काफी सूझ-बूझ वाले इन्सान हैं इसलिए उन्होंने रेगिस्तान के सफर के दौरान, कई बार दिन-रात सफर जारी रखा। इसी वजह से वे रेगिस्तानी तूफान की चपेट में आने से बचे रहे। कुछ व्यापारियों के काफिले अभी भी रेगिस्तान में ही फँसे हुए हैं। अन्य काफिलों के मुकाबले,

इस्तान्बूल पहले पहुँचने की वजह से शेख साहब को माल का दाम भी अच्छा मिला है। अब कुछ दिन इत्मीनान के हैं फिर वापसी के लिए भी माल खरीदना है। लौटते वक्त एक बार फिर ऊँटों पर माल को लादना और काफिला वापसी के सफर पर चल पड़ेगा। हालाँकि, यह ज़िन्दगी मेहनत भरी है लेकिन व्यापार में फायदा भी काफी है। यहाँ के लोग भारतीय कपड़ों के मुरीद हैं। मुँहमाँगी कीमत देने के लिए तैयार रहते हैं। यहाँ ऊँटों के लिए बेहतरीन चारे-पानी की व्यवस्था है। उन्हें भी खूब खाने देना चाहिए, थोड़े मोटे हो जाएँ तब भी चलेगा। वापसी का सफर भी तो मुश्किल भरा होगा न। वैसे यहाँ के लोगों को हिसाब-किताब करने में काफी समय लगता है, तब तक नाच-गाना और मनपसन्द खाना-पीना चलता रहेगा।

जटिल गणनाओं की चुनौती

उस समय यानी रोमन साम्राज्य के दौर में इस्तान्बूल, तुर्कस्तान और भूमध्यसागर के कुछ शहरों में व्यापार का बहुत विस्तार हो रहा था। पूरब के कई देशों से विविध किस्म के कपड़े, केसर, हाथीदाँत, उपकरण-औज़ार, आदि यूरोप के बाज़ार में पहुँच रहे थे। और यूरोप से सोना-चाँदी और किस्म-किस्म की दारू भारत की ओर ले जाई जाती थी। इन शहरों में विविध व्यापारिक मण्डियाँ थीं। काफिले यहीं आकर रुकते थे और सामान की खरीद-फरोख्त करते थे। इस पूरी खरीद-फरोख्त का हिसाब-किताब रखना काफी कठिन और जटिल काम होता था। अलग-अलग किस्म के सामान, हरेक के भाव अलग-अलग, सामान की मात्रा भी फर्क। इन सबका हिसाब मतलब ढेर सारी गणनाएँ। यूरोप में उन दिनों रोमन अंकों का इस्तेमाल होता था। अंकों की यह पद्धति बहुत सहज नहीं थी फिर भी प्रचलन में थी। इस तरीके से लिखते समय बड़ी संख्याएँ काफी लम्बी हो जाती थीं। और इनका गुणा करना भी आसान नहीं था। गणनाओं के लिए तालिका या अबेकस का इस्तेमाल करना पड़ता था। यह किसी नौसिखिए का काम नहीं था, इसलिए व्यापारी इस काम के लिए खास लोगों को रखते थे जो गुणा-भाग के काम में दक्ष थे। इस हुनर को जानने वालों को दाम भी अच्छा मिलता था। लोग भले ही हिसाब में दक्ष हों फिर भी हिसाब-किताब में काफी समय लग जाया करता था। इसलिए शेख साहब इन दिनों आराम फरमा रहे थे।

हिन्द-अरब पद्धति से हिसाब

आखिरकार, हिसाब-किताब हो गया। शेख साहब को कितनी सोने की मुद्राएँ देनी हैं, इसका भी हिसाब हो गया। अब अचानक उस यूरोपीय व्यापारी के मन में यह खयाल आया कि अरब लोग तो वैसे भी अनाड़ी

होते हैं, उन्हें इतने लम्बे-चौड़े हिसाब की क्या समझ होगी। यदि कुछ मुद्राएँ कम भी दे दी जाएँ तो इसे क्या पता चलेगा। वैसे भी, हम इतनी मेहनत से हिसाब बना रहे हैं और यह शेख बस आराम फरमा रहा है। कुछ दाम कम देकर देखता हूँ।

"शेख साहब, हिसाब हो गया है। पैसे गिन लीजिए।"

शेख साहब ने गिनती करने के बाद थोड़ा सोच-विचार करते हुए, अदब के साथ कहा, "माफ करें श्रीमान, मुझे लगता है कि इसमें 200 सोने की मुद्राएँ कम हैं।"

व्यापारी ने फरमाया, "नहीं। हिसाब तो किया है। इतना ही बनता है।"

शेख साहब ने फिर कहा, "नहीं जनाब, इसमें 200 मुद्राएँ कम हैं। रेशम के लिए जो भाव तय हुआ था, उससे ही गणना की है न, मैंने 30 ऊँटों पर रखा रेशम आपको दिया है।"

व्यापारी सोचने लगा कि मैंने इसे 200 मुद्राएँ कम दी हैं, यह इसने इतनी जल्दी किस तरह जान लिया!

व्यापारी ने पूछा, "क्या आपने अभी-अभी पूरा हिसाब कर लिया?"

शेख साहब बोल पड़े, "हाँ, मैंने भी हिसाब-किताब करके देखा है। हम हिन्दसे अंकों का इस्तेमाल करते हैं इसलिए हिसाब जल्दी हो जाता है।"

व्यापारी ने पूछा, "ये हिन्दसे अंक क्या हैं?"

"ये हिन्दसे अंक, दरअसल

चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन

European (descended from the West Arabic)	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9
Arabic-Indic	٠	١	٢	٣	٤	٥	٦	٧	٨	٩
Eastern Arabic-Indic (Persian and Urdu)	۰	۱	۲	۳	۴	۵	۶	۷	۸	۹
Devanagari (Hindi)	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
Tamil		௧	௨	௩	௪	௫	௬	௭	௮	௯

चित्र-1: *अरबी अंकों की पाँच विभिन्न लिपि-शैलियों के बीच तुलना। यूरोपीय व्यावहारिक गणित की परम्परा में हिन्दू-अरबी अंकों का प्रसार।*

भारतीय अंक हैं। अरब में हम लोग इन्हें ही इस्तेमाल करते हैं। इनसे जोड़-घटाना और गुणा-भाग बहुत आसान हो जाता है। कोई भी इसे सीख सकता है और भारतीयों ने तो इसमें अच्छी-खासी तरक्की कर रखी है। मैंने ऐसा सुना है कि इनसे संख्याओं के वर्ग और वर्गमूल भी मालूम किए जा सकते हैं," शेख साहब ने विस्तार से समझाया।

हिन्द-अरब अंकों का सफर

"वाह! क्या बात है! क्या आप हमें भी हिन्दसे अंक पद्धति सिखा देंगे?"

"ज़रूर सिखाएँगे। देखिए, इसमें 1 से 9 तक के अंकों के लिए अलग-अलग चिन्ह हैं। बस, इन्हें ही ध्यान में रखना है। अगले क्रम के समस्त अंक लिखने के लिए आप सिर्फ इन्हीं चिन्हों का इस्तेमाल कर सकते हैं।"

इस तरह के व्यापार की वजह से अरब व्यापारियों के ज़रिए भारतीय अंक और स्थानीय मान का इस्तेमाल करते हुए, संख्या लिखने की प्रणाली यूरोप तक पहुँची।

इस नए तरीके से फायदा तो सबके सामने था लेकिन कुछ नया स्वीकार करने की दिलो-दिमाग की तैयारी मुश्किल ही होती है। फिर भी धीरे-धीरे इनका प्रसार होने लगा। अरब व्यापारियों से सीखी गई कोई नई पद्धति अपनायी जा रही है, यह बात धीरे-धीरे धार्मिक गुरुओं तक पहुँची।

ऊँटों पर बैठने वाले अरब लोग हमें गणित सिखाएँगे? हमारे गणित और हमारी रोमन परम्पराओं का क्या? नहीं-नहीं, इन अरब अंकों का इस्तेमाल हमें मंज़ूर नहीं। कोई भी इनका इस्तेमाल न करे।

भारतीय अंक जिन्हें इण्डो-अरेबिक नम्बर्स भी कहा जाता है, को स्वीकारने

में कुछ समय लगा। फ्लोरेंस में तो इनके विरोध स्वरूप कानून भी बनाया गया। लेकिन इस तरीके के फायदों को देखते हुए व्यापारी वर्ग ने धीरे-धीरे इसे अपनाना और स्वीकार करना शुरू कर दिया।

इटालियन गणितज्ञ फिबोनासी (प्रसिद्ध फिबोनासी शृंखला बनाने वाले) का बचपन उत्तर अफ्रीकी देश अल्जीरिया में बीता था। इसके बाद उन्होंने इजिप्त और सीरिया के गणितज्ञों से गणित सीखा। वहाँ उनका परिचय हिन्द-अरब अंकों से हुआ। फिबोनासी ने अपनी किताब *Liber Abaci* में स्थानीय मान वाली भारतीय पद्धति का वर्णन किया है। इस तरीके के महत्व को समझते हुए, उन्होंने अपनी यूरोप वापसी के बाद प्रचार किया कि स्थानीय मान वाले इस तरीके का तुरन्त इस्तेमाल शुरू किया जाए। इन सब कोशिशों की वजह से धीरे-धीरे यूरोप में भी इस तरीके का उपयोग शुरू हो गया।

यही इण्डो-अरब अंक और भारतीय स्थानीय मान पद्धति आज दुनियाभर में इस्तेमाल हो रही है।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन: आर.एस.जी. कलानिकेतन महाविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र में सहायक प्रध्यापक हैं। लगभग 12 वर्षों का शिक्षण अनुभव। शैक्षणिक ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ, ग्राफिक्स और वाणिज्यिक विज्ञापन डिज़ाइनिंग में मज़बूत व्यावहारिक विशेषज्ञता रखती हैं।

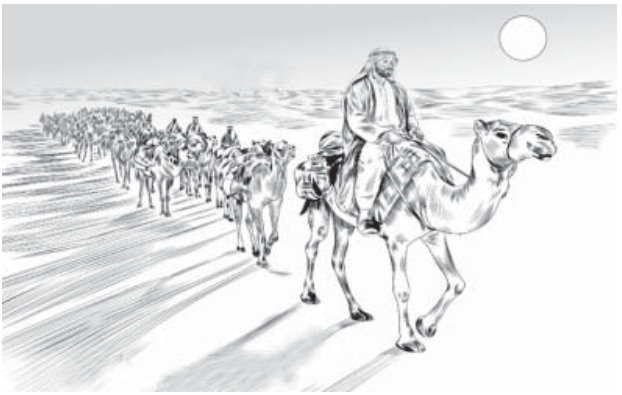

सांख्यिकी की एक महत्वपूर्ण तकनीक का आविष्कार एक बीयर कारखाने में हुआ था

सुशील जोशी, भास बापट व हिमांशु श्रीवास्तव

कई अध्ययनों में किसी आबादी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए यह सम्भव नहीं होता है कि आबादी के एक-एक करके हर सदस्य की जानकारी एकत्रित की जाए। ऐसी स्थिति में उस आबादी के एक नमूने के बारे में जानकारी हासिल की जाती है और माना जाता है कि वह हमें पूरी आबादी के बारे में अनुमान लगाने में मदद करेगी। सवाल यह उठता है कि क्या वह नमूना हमें पूरी आबादी के बारे में सटीकता से कुछ बता सकता है। सांख्यिकी में यह देखने की एक तकनीक है कि जो नमूना आपने चुना है, वह पूरी आबादी का प्रतिनिधित्व करता है या नहीं। इसे टी-टेस्ट कहते हैं और इसका आविष्कार 1908 में बीयर बनाने के एक कारखाने - गिनेस आसवनी (ब्रूअरी) - में हुआ था। किस्सा निहायत रोमांचक है और बताता है कि वैज्ञानिक खोजें कई अजीबोगरीब रास्तों से होती हैं।

दरअसल, इस आसवनी की स्थापना एक गणितज्ञ से शराब निर्माता बने आर्थर गिनेस ने की थी। आपका अनुमान सही है - मशहूर गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स भी इसी आसवनी की देन है। यह आसवनी शुरुआत से ही कई नवाचारों का अड्डा रही थी, जैसे बीयर को उसका जाना-माना झाग देने की विधि का आविष्कार भी यहीं हुआ था।

बहरहाल, जैसे-जैसे कारोबार फैला, आसवनी के मालिकों को गुणवत्ता की चिन्ता सताने लगी। अपनी स्थापना के लगभग 150 वर्ष बाद यानी बीसवीं सदी के शुरू तक यह दुनिया की सबसे बड़ी आसवनी थी। वे चाहते थे कि दुनियाभर में फैली उनकी कलालियों पर बीयर की गुणवत्ता एक-जैसी रहे। पहले तो आँखों से परखकर और कुछ सामान्य से परीक्षण करके काम चल जाता था। परन्तु फिर बढ़ते कारोबर के साथ इस चिन्ता में से निकली, सांख्यिकी की महत्वपूर्ण विधि 'टी-टेस्ट'।

आर्थर गिनेस

इसके लिए कम्पनी ने कुछ होशियार लोगों को नियुक्त करके, उन्हें शोध कार्य करने की छूट दे दी। इसके साथ ही आसवनी तमाम किस्म के सवालों के जवाब खोजने की प्रयोगशाला बन गई - जैसे जौं की सबसे बढ़िया किस्में कहाँ उगती हैं, माल्ट के सत में सेकेरीन का सर्वोत्तम स्तर क्या होगा, या उनके विज्ञापनों का बिक्री पर क्या असर हो रहा है वगैरह।

इन सारे सवालों के साथ एक महत्वपूर्ण सवाल यह था कि किसी छोटे-से नमूने के आधार पर आँकड़ों को कैसे समझा जाए। जैसे गिनेस बीयर का एक महत्वपूर्ण घटक था हॉप (*Humulus lupulus*) नामक लता के मादा फूल। ये फूल बीयर को उसका जाना-पहचाना कड़वापन देने के अलावा कुदरती परिरक्षक का काम भी करते हैं। कौन-से फूल बीयर बनाने के लिहाज़ से सर्वोत्तम होंगे, यह पता करने के लिए शराब निर्माता उस लता में सॉफ्ट रेज़िन की मात्रा को देखते थे।

जैसे मान लीजिए कि सॉफ्ट रेज़िन की 8 प्रतिशत मात्रा को यथेष्ट माना गया। अब यह तो बहुत महँगा सौदा होगा कि पूरे बगीचे के हर फूल (यानी पूरी आबादी) में इसकी मात्रा नापी जाए। तो उन्होंने कुछ नमूनों का परीक्षण करके पूरी आबादी के बारे में अनुमान लगाने की कोशिश की - जैसा कि कोई भी वैज्ञानिक करेगा।

उनके वास्तविक आँकड़े तो हमें उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए कुछ काल्पनिक आँकड़ों से बात को समझने की कोशिश करेंगे। मान लेते हैं कि उन्होंने 9 नमूनों में सॉफ्ट रेज़िन की मात्रा नापी। यह मात्रा 4 प्रतिशत से लेकर 10 प्रतिशत के बीच थी। औसत (माध्य) 6 प्रतिशत था। तो क्या करेंगे? क्या पूरी फसल को खारिज कर देंगे?

जो कम औसत माप मिला है, उसके दो कारण हो सकते हैं। हो सकता है कि पूरी फसल में सॉफ्ट रेज़िन की मात्रा वास्तव में यथेष्ट (8 प्रतिशत) से कम हो। यह भी सम्भव है कि उन्होंने बेतरतीबी से यानी randomly जो फूल चुने

थे, उनमें किसी कारण से यह मात्रा असाधारण रूप से कम रही हो। इसी बात को इस तरह भी कहा जा सकता है – क्या उनके नमूने में पाई गई सॉफ्ट रेज़िन की मात्रा को 8 प्रतिशत से उल्लेखनीय रूप से कम माना जाए, या यह स्वाभाविक उतार-चढ़ाव यानी वास्तविक विविधता की द्योतक है?

हमें यह समझना होगा कि 'सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय' होने का मतलब क्या है। नमूना बड़ा हो तो निष्कर्ष निकालना आसान होगा। लेकिन छोटे-छोटे नमूनों के साथ काम करने में दिक्कत आती है। और गिनेस आसवनी में काम करने वाले विलियम सीली गोसेट ने इसी समस्या का हल सुझाया था।

सम्भाविता और सांख्यिकी

आगे बढ़ने से पहले हमें सांख्यिकी के दो मान समझने होंगे। पहला मान है औसत जो आँकड़ों के किसी समूह के प्रातिनिधिक मध्य को सटीक दर्शाता है। औसत मिलता है, आँकड़ों के मान के जोड़ में आँकड़ों की संख्या का भाग देने से। दूसरा मान है मानक विचलन (standard deviation) जो यह दर्शाता है कि औसत से बड़ी संख्याएँ और औसत से छोटी संख्याएँ औसत से कितनी दूर हैं।

फिर से हॉप्स फूलों के उदाहरण पर लौटते हैं। नमूने के फूलों में सॉफ्ट रेज़िन की औसत मात्रा 6 प्रतिशत थी। और हम यह जानना चाहते हैं कि क्या पूरी फसल में रेज़िन की मात्रा यथेष्ट (8 प्रतिशत) से वास्तव में कम होगी या यह महज़ हमारे नमूने की समस्या है। तो यह सवाल पूछा जा सकता है: इस बात की कितनी सम्भाविता है कि पूरी फसल में औसतन 8 प्रतिशत रेज़िन होने के बावजूद किसी नमूने में 6 प्रतिशत का औसत मिलेगा? इस सम्भाविता को सांख्यिकी की भाषा में *P* मान (यानी सम्भाविता या probability) कहते हैं। पारम्परिक रूप से माना जाता है कि यदि *P* मान 0.05 से कम हो तो हम मानेंगे कि यह अन्तर सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय है। *P* मान पता लगाना गणितीय दृष्टि से कठिन है, लेकिन चूँकि इसे अक्सर काम में लाया जाता है, इसकी मानक तालिकाएँ उपलब्ध हैं।

P मान पर अक्सर दो चीज़ों का असर पड़ता है – पहला है कि कोई भी नमूना पूरी आबादी में अपेक्षित परिणाम से कितना भिन्न है और दूसरा है कि आँकड़ों के बीच बड़ी-बड़ी भिन्नताएँ कितनी आम हैं। यदि मानक विचलन कम होगा तो सारे आँकड़े औसत के नज़दीक ही रहेंगे लेकिन यदि मानक विचलन ज़्यादा है तो औसत की तुलना में भिन्नताएँ कहीं ज़्यादा रहेंगी।

मज़ेदार बात है कि यदि मानक विचलन अधिक है, यानी फूलों में रेज़िन

के आँकड़े औसत से काफी बिखरे हुए हैं, तो ज़्यादा चिन्ता की बात नहीं मानी जाएगी लेकिन यदि अधिकांश आँकड़े औसत के नज़दीक हैं (यानी मानक विचलन कम है) तो सम्भावना है कि वास्तव में रेज़िन की मात्रा 8 प्रतिशत से काफी अलग है।

गोसेट का हल

गोसेट का सबसे पहला पर्चा 1907 में *बायोमेट्रिका* नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। यह उन्होंने छद्मनाम 'स्टूडेंट' के रूप में लिखा था क्योंकि गिनेस ब्रुअरी में शोध पत्र प्रकाशित करने की अनुमति नहीं थी। यह पर्चा बीयर की अम्लीयता को लेकर था। गोसेट की मान्यता थी कि बीयर की अम्लीयता के मान सामान्य रूप में वितरित होंगे। सामान्य वितरण का मतलब होता है कि सारे आँकड़े औसत के आसपास एक तय नियम से (बॉक्स देखें) बराबर (symmetric) वितरित हों। सामान्य वितरण को दो कसौटियों के आधार पर परिभाषित किया जाता है – औसत और मानक विचलन। आँकड़े बहुत थोड़े हों (जैसे 3 या 5) तो भी ये दोनों मूल्य निकाले जा सकते हैं। लेकिन दिक्कत यह थी कि इतने छोटे नमूने से निकाला गया मानक विचलन भरोसेमन्द नहीं होता। लिहाज़ा, छोटे नमूने से निकाले गए ये मान उस सामान्य वितरण को नहीं परिभाषित करते जो बीयर की अम्लीयता को सटीक दर्शाता हो। तो गोसेट के सामने समस्या यह थी कि अत्यन्त कम संख्या में किए गए मापन से निकले मानों से कैसे सटीक निष्कर्ष निकालें।

इस समस्या को सुलझाने के लिए गोसेट ने एक तरीका विकसित किया जिसकी मदद से दो समूहों के औसतों के बीच के अन्तर और समूहों के अन्तर्गत फैलाव की तुलना करके, उन समूहों के भिन्न होने या न होने के बारे में कुछ ठोस निष्कर्ष निकाले जा सकते थे। इस प्रक्रिया को स्टूडेंट्स टी-टेस्ट कहते हैं।

मान लीजिए कि दो समूहों के बीच अन्तर को लेकर आपने कोई परिकल्पना बनाई है और आप यह देखना चाहते हैं कि वह परिकल्पना सही है या नहीं। तो आपको यह देखना होगा कि दो समूहों के औसतों के बीच अन्तर किसी एक समूह के अन्तर्गत फैलाव से ज़्यादा है या नहीं। ज़ाहिर है कि हमारा निष्कर्ष गणितीय समीकरण की तरह निश्चित नहीं हो सकता। हम केवल सम्भाविता की बात कर सकते हैं। गणितीय समीकरण में तो सारे मान निश्चित रूप से पता होते हैं और इसलिए निष्कर्ष एकमेव होता है। जब वास्तविक आँकड़ों के साथ काम करते हैं, तो उनमें कमीबेशी का असर परिणाम पर दिखना स्वाभाविक है। लिहाज़ा, आँकड़ों की अनिश्चितता परिणाम में भी

सांख्यिकीय वितरण

सांख्यिकी में वितरण का मतलब किसी मापन में मिलने वाली संख्याओं के फैलाव से है। मान लीजिए, आप एक विशाल जनसमुदाय के सदस्यों का कद नाप रहे हैं। आप देखते हैं कि समुदाय में बहुत लम्बे या बहुत नाटे सदस्य कम हैं तथा मध्यम लम्बाई के अधिक हैं। यानी अधिकांश लोग औसत कद के आसपास हैं। यदि हम यह पता लगाएँ कि हर 2-2 से.मी. के अन्तराल में कितने सदस्य हैं तो यह दिखेगा कि हर अन्तराल में सदस्यों की संख्या अलग-अलग है, तथा औसत से कम और ज़्यादा, दोनों ही तरफ सदस्य हैं। इसे हम कद का वितरण कहते हैं। चित्र-1 से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। ऐसे चित्र को स्तम्भालेख या हिस्टोग्राम कहते हैं।

सामान्य या नॉर्मल वितरण की अवधारणा को विकसित करने में जिन गणितज्ञों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें एक प्रमुख नाम है - कार्ल फ्रीडरिश गाउस, जिन्होंने सन् 1809 में खगोलीय मापन में आने वाली त्रुटियों का मॉडल बनाने के लिए इसे विकसित किया था। उनके सम्मान में इस वितरण को गाउसियन वितरण (Gaussian Distribution) भी कहा जाता है।

मान लीजिए, हमारे पास किसी आबादी में लोगों के कद के आँकड़े उपलब्ध

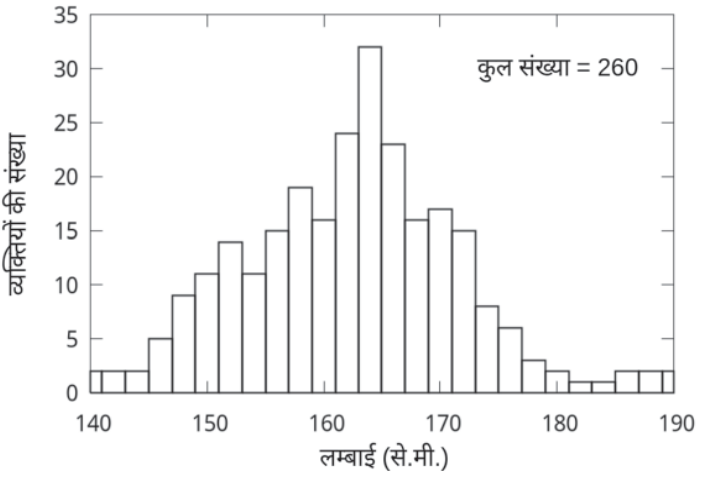

चित्र-1

हैं। हम पता करना चाहते हैं कि किसी भी कद के व्यक्ति होने की सम्भाविता क्या है। इसके लिए निम्नलिखित समीकरण की मदद ले सकते हैं।

$$f(x) = \frac{1}{\sqrt{2\pi\sigma^2}} e^{-\frac{(x-\mu)^2}{2\sigma^2}}$$

इसमें,

x = कद का वह मान है जिसकी सम्भाविता हम देखना चाहते हैं,

μ = औसत (mean),

σ = मानक विचलन (standard deviation),

e = गणित का एक स्थिरांक (लगभग 2.718)।

इसी वितरण को एक ग्राफ के रूप में भी दिखाया जा सकता है। ग्राफ में x-अक्ष पर कद के मान दर्शाएँगे और y-अक्ष पर प्रत्येक कद के लोगों की संख्या। यदि कद के सारे आँकड़े औसत के दोनों ओर बराबर-बराबर हों, तो ग्राफ घण्टी के आकार का बनेगा। ऐसे वितरण को सामान्य वितरण कहते हैं और ऐसे ग्राफ को 'घण्टी वक्र' (Bell curve) भी कहा जाता है। इस वक्र में बीच का हिस्सा (औसत के पास) सबसे ऊँचा होता है, जिससे पता चलता है कि औसत मान मिलने की सम्भाविता सबसे ज़्यादा है। जैसे-जैसे हम औसत से दूर जाते हैं, सम्भाविता धीरे-धीरे घटती जाती है। यह वक्र हमें बताता है कि कौन-सा मान आम है और कौन-सा दुर्लभ।

किसी समूह या आबादी में किसी गुण (जैसे कि कद) का मान किसी एक आँकड़े के बराबर होने की सम्भाविता इस वक्र से पता की जा सकती है।

सम्भाविता की गणना कुछ ऐसी होगी। इस वितरण के लिए हमारे जनसमुदाय के आँकड़ों से हमें पता चलता है कि औसत (μ) 164 तथा मानक विचलन (σ) 13 के बराबर है (इसकी गणना के बारे में हम आगे के लेख में बात करेंगे।)। सबसे पहले $\sigma\sqrt{(2\pi)}$ की गणना कर लेते हैं, जो होगी 32.59. मानिए कि हम x का मान औसत के बराबर यानी 164 होने की सम्भाविता जानना चाहते हैं। तो $(x-\mu)$ का मान होगा 0, जिससे कि $e^{[-(x-\mu)^2/2\sigma^2]}$ का मान होगा 1. अर्थात् $f(x)$ का मान होगा 1/32.59 अर्थात् 0.031. यदि हम x का मान औसत से σ की दूरी पर होने की सम्भाविता जानना चाहते हैं तो x होगा $\mu+\sigma$ (अर्थात्, 164+13=177) के बराबर या $\mu-\sigma$ (अर्थात्, 164–13=151) के बराबर। यानी $(x-\mu)$ का मान होगा $+\sigma$ या $-\sigma$. दोनों के लिए

ही $e^{[-(x-\mu)^2/2\sigma^2]}$ का मान होगा $e^{[-1/2]}$ जो कि 0.61 है। इससे $f(x)$ का मान निकल आता है 0.019.

इन तीन गणनाओं के मान ग्राफ में खड़ी रेखाओं से दर्शाए गए हैं (चित्र-2)।

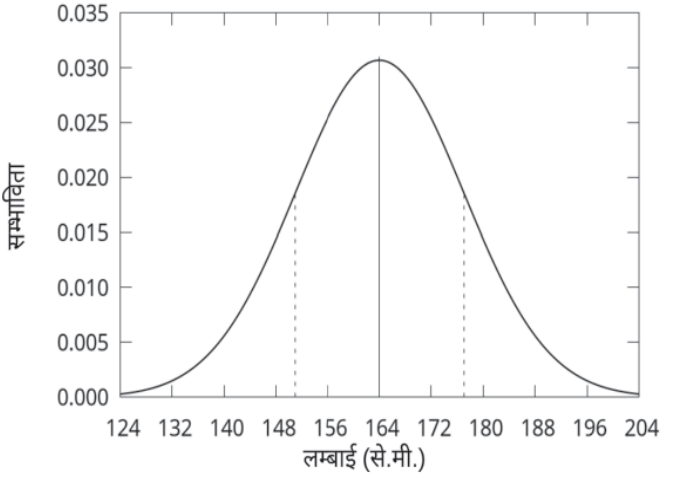

चित्र-2

दिखती है। तो हम बात करते हैं कि उस परिणाम के सही होने की सम्भाविता क्या है।

कम अवलोकनों से निकले औसत और लगभग मानक विचलन के आधार पर बीयर की अम्लीयता के मानों का जो वितरण निकलता था, वह सामान्य वितरण नहीं होता था। सामान्य वितरण वह होता है जब सारे आँकड़ों के मान औसत के दोनों ओर लगभग बराबर वितरित हों तथा औसत से बहुत दूर न हों। गोसेट ने इसे टी-वितरण नाम दिया। टी-वितरण कुल अवलोकनों की संख्या पर काफी हद तक निर्भर करता है। लिहाज़ा, इस वितरण की आकृति अवलोकनों की संख्या के आधार पर बदलती रहती है। दरअसल, अवलोकनों की संख्या बढ़ने पर टी-वितरण सामान्य वितरण जैसा दिखने लगता है।

t-परीक्षण का उदाहरण

दरअसल, गोसेट के काम से पहले भी सांख्यिकी के महत्व की बात पता

थी और उसकी गणना भी की जाती थी लेकिन गोसेट ने छोटे नमूनों पर इसे लागू करने की विधि का आविष्कार किया। गोसेट ने किया वही जो एक जर्मन गणितज्ञ एफ.आर. हेलमर्ट दरअसल 1876 में कर चुके थे लेकिन गोसेट को उसकी कोई जानकारी नहीं थी।

एक उदाहरण से बात साफ हो जाएगी। मान लीजिए, बीयर की दो किस्में ली गईं (किस्म A और किस्म B)। दोनों किस्मों के कई पीपों को कुछ महीनों तक संग्रहित किया गया। देखना यह है कि क्या संग्रह करने से उनमें मौजूद किसी वांछित पदार्थ के अंश में कोई अन्तर पड़ता है। हमारी प्रारम्भिक परिकल्पना है कि दोनों समूहों के बीच वांछित पदार्थ की मात्रा के बीच अन्तर शून्य होगा। अब वास्तविक आँकड़ों पर टी-टेस्ट लागू करके देखा जाएगा कि क्या यह परिकल्पना सही है।

दोनों किस्मों के बेतरतीब ढंग से चुने 5-5 पीपों में से 10-10 मि.ली. बीयर परीक्षण के लिए निकाली गई। प्रथम किस्म के नमूनों में वांछित पदार्थ के अंश थे: 137, 135, 136, 138 और 142 मि.ग्रा., तथा द्वितीय किस्म के नमूनों में अंश थे: 124, 126, 131, 126, 141 मि.ग्रा.। ये तालिका-1 के प्रथम स्तम्भ में दर्शाए गए हैं।

गणना के चरण इस प्रकार होंगे-

1. दोनों किस्म के नमूनों में औसत मात्रा निकाल ली जाए। तालिका-1 में इसे दोनों समूहों के लिए पहले स्तम्भ की अन्तिम पंक्ति में दर्शाया गया है। औसत मात्रा है - किस्म A के लिए 137.6 और किस्म B के लिए 129.6 मि.ग्रा.।

   इतनी गणना से तो लगेगा कि किस्म A में वांछित पदार्थ की औसतन मात्रा अधिक है। लेकिन मात्र औसत देखकर हम नहीं कह सकते कि मापे गए मानों में फैलाव कितना है। क्योंकि सम्भव है कि औसत में अन्तर सिर्फ इस वजह से है कि किसी एक समूह में कोई एक सदस्य औसत से बहुत कम या ज़्यादा मान दर्शाता है।

2. गणना के दूसरे चरण में हम दोनों नमूनों में मानक विचलन की गणना करते हैं। मानक विचलन निकालने की प्रक्रिया थोड़ी जटिल है। इसमें करना यह होता है कि मात्रा के प्रत्येक मान में से उस समूह के औसत को घटाया जाए (स्तम्भ-2) और उसका वर्ग निकाला जाए (स्तम्भ-3)। और बाद में इन वर्गों का औसत निकाल लेते हैं, यानी इन वर्गों के जोड़ में प्रत्येक समूह के कुल सदस्यों की संख्या का भाग दे देते हैं। ये मान तालिका के तीसरे स्तम्भ की अन्तिम पंक्ति में दर्शाए गए हैं।

तालिका-1

किस्म A				
	विभिन्न पीपों में वांछित पदार्थ की मात्रा (मि.ग्रा./10 मि.ली.) x_A	औसत से अन्तर $x_A - \bar{x}_A$	औसत से अन्तर का वर्ग $(x_A - \bar{x}_A)^2$	मानक विचलन A $\sigma_A = \sqrt{\sum \frac{(x_A - \bar{x}_A)^2}{n_A}}$
	137	-0.60	0.36	2.42
	135	-2.6	6.76	
	136	-1.6	2.56	
	138	0.4	0.16	
	142	4.4	19.36	
योग	688		29.2	
योग/5	$\bar{x}_A$ = 137.6		5.84	

किस्म B				
	विभिन्न पीपों में वांछित पदार्थ की मात्रा (मि.ग्रा./10 मि.ली.) x_B	औसत से अन्तर $x_B - \bar{x}_B$	औसत से अन्तर का वर्ग $(x_B - \bar{x}_B)^2$	मानक विचलन B $\sigma_B = \sqrt{\sum \frac{(x_B - \bar{x}_B)^2}{n_B}}$
	124	-5.6	31.36	6.15
	126	-3.6	12.96	
	131	1.4	1.96	
	126	-3.60	12.96	
	141	11.4	129.96	
योग	648		189.2	
योग/5	$\bar{x}_B$ = 129.6		37.84	

x = वांछित पदार्थ की मात्रा, $\bar{x}$ = औसत का मान, σ = मानक विचलन

3. अन्त में, वर्गों के औसत का वर्गमूल निकालते हैं, जो चौथे स्तम्भ की अन्तिम पंक्ति में दर्शाए गए हैं। इसे ही मानक विचलन कहते हैं।

तो अब हमारे पास कई आँकड़े हैं - दोनों समूहों में नमूनों की संख्या, दोनों समूहों में वांछित पदार्थ की औसत मात्रा, और समूहों के मानक विचलन। इनकी मदद से हम एक मान निकाल सकते हैं जिसे *t*-मूल्य कहते हैं। दरअसल, हमें एक ऐसे मान की तलाश है जो हर समूह के आन्तरिक विचलन को मद्देनज़र रखते हुए उन समूहों के बीच अन्तर को इंगित करे।

t-मूल्य की गणना नीचे दिए तरीके से की जाती है,

$$
\begin{aligned}
t &= \frac{\bar{x}_A - \bar{x}_B}{\sqrt{\sigma_A^2/n_A + \sigma_B^2/n_B}} \\
&= \frac{137.6 - 129.6}{\sqrt{(5.84/5) + (37.84/5)}} \\
&= \frac{8}{\sqrt{1.16 + 7.56}} \\
&= \frac{8}{2.95} \\
&= 2.71
\end{aligned}
$$

गोसेट ने इस सवाल का हल निकाला कि यदि t का कोई मान हो तो इस मान से क्या हम इस बात की सम्भाविता बता पाएँगे कि औसतों के बीच का अन्तर वास्तविक नहीं किन्तु केवल आँकड़ों में बेतरतीब उतार-चढ़ाव की वजह से है। इसका हल ढूँढने में गोसेट ने ऐसी तालिकाओं का निर्माण किया जिनसे t मान पता होने से P का मान पता चल जाता है। t का मान बड़ा होने पर कहा जाएगा कि दो किस्मों में अन्तर वास्तविक है, यह केवल बेतरतीबी की वजह से सम्भव नहीं है।

टी-टेस्ट तालिका से हमें इस उदाहरण के लिए P मान का पता चलता है, 0.13. इसका मतलब यह हुआ कि नमूनों के बीच का अन्तर 87% निश्चितता से वास्तविक है। इससे पता चलता है कि बीयर की दो किस्में वांछित पदार्थ के मामले में एक-दूसरे से काफी अलग हैं। यदि t का मान 3.2 के करीब होता तो P का मान होता 0.01 और हम कहते कि नमूनों के बीच अन्तर 99% निश्चितता से वास्तविक है। यानी कि दोनों नमूने यकीनन बहुत ही अलग हैं।

अन्य उपयोग

ऐसी स्थितियाँ वैज्ञानिक अनुसंधान में बार-बार उभरती हैं। जैसे किसी दवा या उपचार के क्लीनिकल परीक्षण की ही बात करें। किसी उपचार का परीक्षण करना है। मरीज़ों के दो समूह बनाए गए हैं। एक समूह को औषधि दी जाती है जबकि दूसरे को उसी जैसी दिखने वाली कोई चीज़ दी जाती है जिसमें वह औषधि मौजूद नहीं है। दूसरे समूह को हम 'प्लेसिबो समूह' या 'कंट्रोल समूह' कहते हैं। परिणाम यह निकलता है कि 'औषधि समूह' का प्रदर्शन थोड़ा बेहतर रहा। क्या इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह औषधि कारगर है? यहाँ भी वही सवाल उठता है कि कितने अन्तर को सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय माना जाए। टी-टेस्ट यहाँ फिर काम आता है।

दो समूहों की तुलना वैज्ञानिक अनुसंधान में अक्सर की जाती है। इस प्रकार के उदाहरणों में किए जाने वाले टी-परीक्षण को **स्वतंत्र दो-नमूना टी-परीक्षण** कहा जाता है। ऐसा परीक्षण यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि दो स्वतंत्र समूहों के माध्य के बीच कोई उल्लेखनीय अन्तर है या नहीं। इससे यह आकलन करने में सहायता मिलती है कि समूहों के बीच देखे गए अन्तर वास्तविक प्रभाव के कारण हैं या केवल बेतरतीब संयोग के कारण हैं। इसका एक और उदाहरण देखते हैं।

उच्च रक्तचाप के इलाज के लिए एक नई खोजी गई दवा के असर के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए इसी तरह का परीक्षण किया जा सकता है। मरीज़ों के दो समूह बनाए गए; इनमें से प्रथम समूह (उपचार समूह) को वह दवा दी गई जबकि दूसरे को उसी जैसी दिखने वाली कोई चीज़ दी गई (प्लेसिबो समूह या कंट्रोल समूह)। परिणाम निम्नानुसार रहे:

- उपचार समूह (सदस्य संख्या 120); रक्तचाप में औसत गिरावट 15.3 तथा मानक विचलन 4.2 मि.मी. Hg
- कंट्रोल समूह (सदस्य संख्या 120); रक्तचाप में औसत गिरावट 8.7 तथा मानक विचलन 3.9 मि.मी. Hg

इन आँकड़ों को देख यह निष्कर्ष निकलता दिखता है कि 'औषधि समूह' का प्रदर्शन बेहतर रहा। क्या इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह औषधि कारगर है? यहाँ भी वही सवाल उठता है कि प्रदर्शन में कितने अन्तर को सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय माना जाए।

इन आँकड़ों से t मान की गणना इस तरह की जाएगी,

$$t = \frac{15.3 - 8.7}{\sqrt{(4.2^2/120) + (3.9^2/120)}}$$
$$= \frac{6.6}{\sqrt{0.147 + 0.126}}$$
$$= \frac{6.6}{0.522}$$
$$= 12.64$$

t के इस मान के लिए P का मान 0.001 से कम होता है। यानी उपचार समूह में रक्तचाप में गिरावट बेतरतीबी से नहीं बल्कि दवा के कारण है। दूसरे शब्दों में, हम यह कहेंगे कि रक्तचाप में गिरावट सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय है, अर्थात् दवा असरदार है।

युग्मित टी-परीक्षण

टी-परीक्षण का एक और प्रकार है जिसे युग्मित टी-परीक्षण या आश्रित टी-परीक्षण कहा जाता है। इसका उपयोग होता है जब एक ही समूह के सदस्यों के किसी गुण को दो अलग-अलग समय पर या दो अलग-अलग परिस्थितियों में मापा जाता है। युग्मित टी-परीक्षण की पद्धति स्वतंत्र दो-नमूना टी-परीक्षण से थोड़ी अलग है। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी।

एक अध्ययन की कल्पना करें जहाँ आप एक नई शिक्षण पद्धति की प्रभावशीलता का परीक्षण कर रहे हैं। आप 20 विद्यार्थियों का परीक्षा स्कोर नए तरीके का उपयोग करने से पहले और बाद में मापते हैं। युग्मित टी-परीक्षण का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है कि नई पद्धति के उपयोग के बाद छात्रों के अंकों में सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय सुधार हुआ है या नहीं। इस परीक्षण में हम हर सदस्य के स्कोर के बीच नया तरीका अपनाने के पूर्व और पश्चात् अन्तरों पर ध्यान देते हैं। हर सदस्य के लिए अन्तर की व्याख्या होगी:

$d =$ *पश्चात् स्कोर – पूर्व स्कोर*

मान लीजिए कि हमारे पास 20 मान हैं: d_1, d_2 ... d_{20}. अब हम इनके औसत $\bar{d}$ तथा मानक विचलन σ की गणना करेंगे।

परीक्षण के लिए t का मान होगा:

$$t = \bar{d}\,\sigma/\sqrt{n}$$

इस t मान से हम मानक तालिका से P के मान का पता लगाएँगे जैसे पहले लगाया था। यदि P मान कम हो तो हम यह कहेंगे कि पूर्व और पश्चात् स्कोर के बीच का अन्तर वास्तविक है, बेतरतीब ढंग से नहीं।

समापन

संक्षेप में, टी-परीक्षण एक ऐसी सांख्यिकीय पद्धति है जिससे हम कम सदस्य वाले समूहों के (यानी छोटे नमूनों के) किसी गुण में दिखाई देने वाले अन्तर के वास्तविक होने या बेतरतीबी से होने का अनुमान लगा सकते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान, औद्योगिक निर्माण या स्वास्थ्य परीक्षण जैसे कई क्षेत्रों में यह परीक्षण पद्धति काम आती है। मज़ेदार बात यह है कि इस पद्धति की खोज किसी वैज्ञानिक या गणितज्ञ ने नहीं बल्कि आसवनी में काम करने वाले एक जिज्ञासु व्यक्ति ने की थी।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

भास बापट: भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान (IISER) पुणे में भौतिकी पढ़ाते हैं। भास भारत के सौर मिशन 'आदित्य-L1' का हिस्सा रहे और विज्ञान शिक्षा में अथाह रुचि रखते हैं। एक लम्बे अरसे से *एकलव्य* संस्था के साथ जुड़े हैं।

हिमांशु श्रीवास्तव: *एकलव्य* फाउंडेशन के विज्ञान समूह से जुड़े हैं।

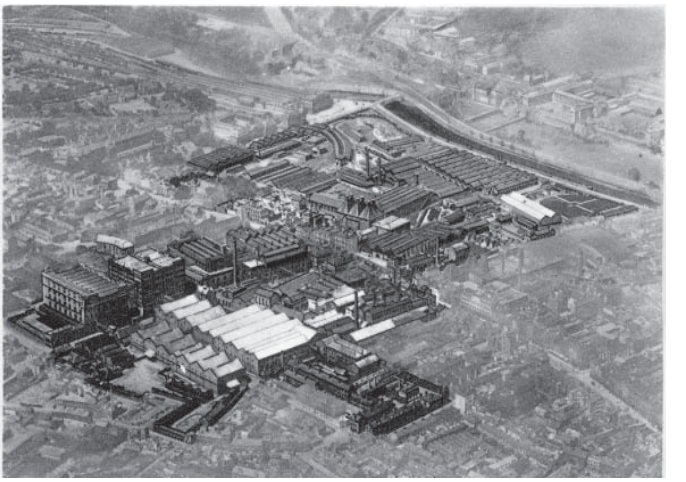

दुनिया की सबसे बड़ी गिनेस ब्रुअरी का हवाई दृश्य।

मिट्टी से मिट्टी तक: आवां का तिलस्म

क्या, कैसे, और कहाँ की पूरी कहानी

अनिल सिंह

आनन्द निकेतन में हम इस बात के मौके ढूँढते और बनाते रहे हैं कि बच्चों के सामने एक पूरी प्रक्रिया का खुलासा हो और बच्चे उसे खुद से अनुभव कर पाएँ। चीज़ें कैसे काम करती हैं? कैसे बनती हैं? कहाँ से आती हैं और उनका क्या सफर होता है? वगैरह।

चित्र: अनिल सिंह

एक बार हम मिट्टी के खिलौने बना रहे थे। कुम्हार के यहाँ से हम बनी बनाई मिट्टी लेकर आए थे। छोटे-बड़े सभी लोग मिट्टी से अपनी-अपनी पसन्द का आकार गढ़ रहे थे। यह दोपहर बाद तीन घण्टे का कार्यक्रम था। बाहर खुले फर्श पर प्लास्टिक की चटाइयाँ और अखबार बिछाकर हमने काम करने की जगह बनाई थी। कोई हाथी, चिड़िया, साँप, चूल्हा बना रहा था तो कोई इन्सान बना रहा था। एक बच्चा स्कूल के शो-केस में रखी टेराकोटा की एक चिड़िया माँग लाया और उसे देखकर अपना खिलौना बनाने लगा। कुछ और बच्चे भी उसे देखकर वैसी ही चिड़िया बनाने की होड़ में लग गए। एक ने उसे उठाकर अपने पास रख लिया तो पहले वाले ने उसे वापस ले लिया। इस बीच तीसरे को भी वही चिड़िया चाहिए थी और इसके चलते उनमें खींचातानी मच गई। एक बच्चा चिड़िया लेकर भागा लेकिन वह उसके हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर गई और टूट गई। थोड़ी देर खामोशी बनी रही। टूटे हुए टुकड़े उठाकर एक तरफ रख दिए गए, लेकिन कुछ बहुत ही बारीक टुकड़े अभी भी वहाँ बिखरे हुए थे। पहले वाला बच्चा जो इस बात से दुखी था कि उसके कारण यह सब हुआ, उन टुकड़ों को उठाकर

लाया और एक गोल पत्थर की मदद से उन्हें बारीक पीसकर अपनी मिट्टी में मिलाने लगा। लेकिन वे टुकड़े तो पकी हुई मिट्टी के थे और वह बच्चा जिसमें उन्हें मिला रहा था, वो कच्ची मिट्टी थी, सो वे अच्छी तरह मिल ही नहीं पा रहे थे और उसकी वजह से गीली मिट्टी में दरार आ रही थी।

स्कूल के हमारे साथी और बच्चों के खेल व गतिविधि शिक्षक विजय ने यह देखकर कहा, "अरे, यह तो अलग-अलग मिट्टी हैं। आपस में नहीं मिलेंगी।" बस, वहीं से यह आइडिया आया कि मिट्टी का यह सफर अगर बच्चे जान पाएँ और उसका खुद से अनुभव कर पाएँ तो उनके लिए यह सीखने का एक बढ़िया मौका होगा। विजय ने सुझाया कि क्यूँ न मिट्टी खोदकर लाने, उसे छाँटने, पीसने, छानने, गलाने और पीटकर लचीली बनाने की एक विस्तृत गतिविधि की जाए। फिर उसी मिट्टी से बनी चीज़ों को सुखाकर, उन्हें आवां में पकाने तक का उपक्रम भी किया जाए।

मिट्टी की तैयारी

हम सबको यह आइडिया बहुत जमा। ये ठण्ड के दिन थे। अगले ही महीने हमने नहर के पास से सूखी मिट्टी खोदकर लाने की योजना बनाई। स्कूल का समय खत्म होने से ठीक पहले हम सब बांस की डलिया, जूट के थैले और गत्ते के कार्टन लेकर नहर के किनारे पहुँच गए। हमारे पास मिट्टी खोदने के लिए गैंती, फावड़े, छोटी कुदाल, खुरपी और सरिया थे। हमने काफी सारी मिट्टी खोदी और उसे भरकर स्कूल ले आए। बाहर के फर्श पर एक किनारे उसका ढेर लगा दिया। तय हुआ कि अगले दिन सुबह इस पर आगे का काम किया जाएगा। दूसरे दिन सुबह की संगीत सभा के बाद धूप चढ़ने से पहले ही हमने मिट्टी की छँटाई का काम शुरू कर दिया।

सभी बच्चों से मिट्टी में से कंकड़, पत्थर, काँच, प्लास्टिक, लकड़ी, ईंट के टुकड़े, खपरे के टुकड़े, तार, पन्नी, पक्षियों के पंख आदि छाँटकर अलग करने को कहा गया। इनमें से कुछ भी मिट्टी में नहीं रहना चाहिए। हमने पाया कि कंकड़-पत्थर के अलावा मिट्टी में से काँच, प्लास्टिक व पन्नी के भी काफी टुकड़े निकले। उनका एक अलग ढेर लग गया। एक घण्टे के इस काम में सबको बड़ा मज़ा आया। सबको यह समझ में आया कि बसाहट के पास की मिट्टी में कितनी सारी अन्य विजातीय चीज़ें भी मिली होती हैं। हमने तय किया कि हर रोज़ स्कूल के बाकी कामों के साथ ही, मिट्टी के प्रोजेक्ट के अगले चरण पर भी हम काम किया करेंगे।

दूसरे दिन मिट्टी को कूटने और पीसने का काम शुरू हुआ। लकड़ियों के पटरे, हथोड़ी, फरशी के टुकड़े और गोल पत्थरों की मदद से यह काम किया गया। मिट्टी के ढेलों को

पीसकर बारीक कर दिया गया। बच्चों ने देखा कि मिट्टी में अभी भी महीन कंकड़ और रेत के कण थे। अब अगले दिन इसको छानने का काम किया जाएगा।

छानना और गूँथना

सुबह से ही सब बच्चों को इस बात की उत्सुकता थी कि मिट्टी को कैसे चालेंगे, कैसे छानेंगे। सबने अपना-अपना आइडिया दिया। कपड़े से छानने के अलावा, चाय छन्नी और आटा छानने की चलनी के सुझाव भी आए। सब कुछ लाकर रख दिया गया। इस दौरान यह तय किया गया कि मिट्टी पहले आटा चलनी से छानी जाए। जब बड़े-बड़े कंकड़ निकल जाएँ तब कपड़े से छाना जाए जिससे कि बारीक रेत भी निकल जाए। कुछ बच्चे चाय की छन्नी लेकर बैठे। उस दिन मिट्टी छानने का काम थोड़ी ज़्यादा देर तक चलता रहा। यह छानी हुई मिट्टी एक बड़े टब में रख दी गई और उसके ऊपर एक पुरानी चादर ढँक दी गई। इसके बाद बच्चे हाथ-पैर धोकर स्कूल के रोज़ के कामों में लग गए।

अगले दिन छानी हुई मिट्टी का अवलोकन किया गया। यह बहुत ही महीन और एकदम धूल के पाउडर की तरह थी। अब इसमें पानी मिलाकर, इसे गलने के लिए रखना था। टब में पानी मिलाकर एक लकड़ी की मदद से उसे चलाया गया ताकि

पूरी मिट्टी अच्छी तरह से मिलजुल जाए। विजय ने सुझाया कि मिट्टी को एक-दो दिन के लिए इसी तरह छोड़ दिया जाए ताकि यह अच्छी तरह गल जाए।

दो दिन बाद सुबह हम मिट्टी सत्र के लिए फिर से इकट्ठे हुए। साफ फर्श पर पूरी मिट्टी को निकाला गया। मिट्टी ने अच्छी तरह पानी सोख लिया था। अब बारी थी मिट्टी को कूट-पीटकर लचीला बनाने की। एक बार फिर लकड़ियों के पटरे, हथोड़ी, फरशी के टुकड़े और गोल पत्थरों की मदद से मिट्टी को कूटने का काम शुरू हुआ। बीच-बीच में मिट्टी को हाथ से भी फर्श पर पटक-पटककर लचीला बनाया जा रहा था। एक घण्टे बाद जब पूरी मिट्टी को इकट्ठा किया गया तो वो काफी नरम और लचीली हो चुकी थी। इसके बाद मिट्टी को उसी टब में गीला कपड़ा ढँककर रख दिया गया। यह तय हुआ कि अगले दिन दोपहर बाद हम मिट्टी के खिलौने और अन्य चीज़ें बनाएँगे। सब लोग सोचकर आएँ कि वे क्या बनाना चाहते हैं।

खिलौने बनाना, सुखाना व पकाना

अगले दिन का मिट्टी सत्र बहुत ही रोचक रहा। हमने सोचा कि अलग-अलग चीज़ें बनाने की बजाय क्यों न हम ऐसी चीज़ें बनाएँ जिन्हें जोड़कर कोई एक नई सजावटी वस्तु बनाई जा सकती हो। स्कूल में हमारे पास टेराकोटा का एक झूमर था। उसमें लोहे की एक गोल रिंग में समान अन्तराल से लटकी हुईं अलग-अलग लम्बाई की सात लड़ियाँ थीं। हर लड़ी में कुछ-कुछ दूरी के अन्तर पर चिड़ियाँ और मोती पिरोए हुए थे और नीचे अन्त में एक पत्ती लटकी हुई थी। हमने गिनती की कि अगर ऐसे तीन झूमर बनाने हों तो कितनी चिड़ियाँ, कितने

मोती और कितनी पत्तियाँ लगेंगी। इसके अलावा हाथी, गाय, साँप, इन्सान या बच्चे जो भी चाहें, अपनी मर्ज़ी से बनाएँ लेकिन चिड़िया, मोती और पत्ती का लक्ष्य सबके लिए रखा गया। चिड़िया, मोती और पत्तियों का आकार भी मोटे तौर पर एक-जैसा रखने का तय किया गया ताकि झूमर आकर्षक लगें। विजय थोड़ी-थोड़ी देर में सबके बीच जाकर जानकारी ले रहे थे कि कितनी चिड़िया, मोती और पत्तियाँ बन गई हैं। बहुत-ही मज़ेदार माहौल था। विजय बीच-बीच में ज़ोर-से आवाज़ लगाकर बोलते कि अब तक इतनी चिड़िया, इतने मोती और इतनी पत्तियाँ बन गई हैं, और अब इतने-इतने की ज़रूरत और है।

आज का मिट्टी सत्र थोड़ा लम्बा चला। दो घण्टे में चीज़ें बनकर तैयार हो गईं। चटाई पर बच्चों द्वारा बनाए गए खिलौने बिखरे हुए थे। बची हुई मिट्टी से गणित की कक्षा के लिए कुछ छोटे-छोटे पाँसे और पेन स्टैण्ड बनाए गए। खिलौनों से भरी चटाई को एक किनारे सरका दिया गया ताकि खिलौने सुरक्षित रूप से सूख सकें।

अगले दिन बच्चे स्कूल आते ही अपनी बनाई हुई चीज़ों को देखने के लिए आतुर थे। ज़्यादातर कृतियाँ रातभर में सूख चुकी थीं। पक्का होने के लिए उन्हें एक दिन और धूप में रखा रहने दिया गया।

इस बीच यह योजना बनाई गई कि इन खिलौनों को पकाने के लिए पारम्परिक विधि वाला आवां• लगाया जाए। इसके लिए बगीचे में एक किनारे पर जगह निर्धारित की गई। एक गड्ढा खोदा गया और उसमें लकड़ियाँ, घासफूस, कागज़-गत्ते व नारियल की जटाएँ रखी गईं। उसके ऊपर एक परत मिट्टी के सूखे खिलौनों की रखी गई। उसके बाद फिर से लकड़ियाँ और घासफूस बिछाई गई। उन पर खिलौनों की एक और परत रखी गई। इस तरह पूरा आवां जमाया गया। जब सारे खिलौने जमा दिए गए तो सबसे ऊपर कागज़, गत्तों और घासफूस की अन्तिम परत जमाई गई। इस पूरे आवां के ढेर को गीली मिट्टी से थापा गया। दो-तीन जगहों पर छेद बनाए गए ताकि जब आग लगाई जाए तो उन छेदों से हवा भीतर जा सके और धुआँ बाहर निकल सके। सारे बच्चे इस पूरी प्रक्रिया को कदम-दर-कदम देख रहे थे और बीच-बीच में सवाल भी पूछ रहे थे।

अब बारी थी, आवां में आग लगाने की। बहुत ही ध्यान से आवां के एक छेद से जलता हुआ एक कागज़ अन्दर डाला गया। धीरे-धीरे आग सुलगने लगी और अन्य छेदों से धुआँ निकलने लगा। बच्चों के लिए यह सबसे मज़ेदार क्षण था। भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी और अन्दर

• *मिट्टी के बर्तन पकाने का भट्ठा।*

फोटो: विजय

लकड़ियाँ, घासफूस, गत्ते एवं नारियल के खोपरे जलना शुरू हो गए थे। दिनभर आवां सुलगता रहा और उससे धुआँ निकलता रहा। स्कूल बन्द होने का समय हो गया और बच्चे एक रहस्य लेकर अपने-अपने घर चले गए।

मिट्टी से मिट्टी तक का सफर

अगले दिन रविवार था। तड़के विनोद भाई आए जो सप्ताह में एक बार स्कूल में गहन साफ-सफाई का काम करते थे। स्कूल की साफ-सफाई हो जाने के बाद उन्होंने बगीचे के पास खड़ी अपनी मोटर साइकिल को धोना शुरू कर दिया। उन्हें इस बात का बिलकुल भी अन्दाज़ा नहीं था कि बगीचे के एक कोने में आवां सुलग रहा है। गाड़ी धोने पर जो पानी बहा, वो सारा बहते हुए बगीचे के उस कोने तक पहुँच गया जहाँ आवां लगा हुआ था। पानी धीरे-धीरे आवां के भीतर समाता गया। विनोद भाई को पता भी न चला कि क्या दुर्घटना घट चुकी है। पानी समाने से अन्दर धधक रही आग बुझ गई, जिससे खिलौने पकने की प्रक्रिया बीच में ही टूट गई। दूसरा, कुछ खिलौने जो अभी कच्चे ही थे, वे गलकर मिट्टी में मिल गए। तीसरा, अधपके और गरम खिलौनों पर पानी पड़ जाने से अधिकतर में दरारें भी आ गईं। कुछ खिलौने जो ऊपर की तरफ थे, वे ही सलामत रह पाए।

सोमवार को जब हम सब स्कूल पहुँचे और हमें यह सारा किस्सा पता चला तो आनन-फानन में हमने आवां खोला। सारे बच्चे झोंप (झुण्ड) लगाकर खड़े थे और आवां में से निकलते जा रहे अपने खिलौनों को देख रहे थे। खिलौनों के टूट-फूट जाने और गल जाने का रंज सबको था लेकिन इस बात की खुशी भी थी कि प्रक्रिया पूरी हो गई थी।

आवां खराब हो जाने के कारण तीन झूमरों के हिसाब से तो पर्याप्त चिड़िया, मोती और पत्तियाँ नहीं बचे थे, लेकिन हाँ, किसी तरह हम एक झूमर तो बना सके। इसके अलावा, दो हाथी, कुछ गुड्डे-गुड़ियाँ और अतिरिक्त चिड़ियाँ व पत्तियाँ भी बची थीं। जो खिलौने पक गए थे, वे पक्के और मज़बूत हो गए थे। उन पर काले और लाल रंग के धब्बे, आवां में उनके पकने की गवाही दे रहे थे। कुछ खिलौने जो गल गए थे या आधे-अधूरे पके थे, उन्हें तोड़कर बगीचे की मिट्टी में मिला दिया गया। इस तरह मिट्टी-से-मिट्टी तक का यह सफर पूरा हुआ!

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: अनिल सिंह।

नाटक इंडिया कम्पनी

अमित और जयश्री

एक मोटे-से पेड़ के सूखे तने पर, दोनों तरफ पैर लटकाए, बच्चे लाइन से बैठे हैं। बच्चों के मुँह पर सफेदी पुती है, सिर पर ओरिगेमी से बनी टोपी है - वे अँग्रेज़ सैनिक बने हैं। सभी के हाथ में लकड़ी है जिसे वे नाव के चप्पू की तरह चला रहे हैं। वास्को ड गामा लकड़े पर खड़ा होकर कागज़ की दूरबीन से देख रहा है और खुशी से चिल्लाता है - हम भारत पहुँच गए! ऐसे शुरू होता था, 15 अगस्त को पहली बार दिखाया गया 'अँग्रेज़िया' नाटक, जिसे आधारशिला के बच्चों की नाटक टीम 'नाटक इंडिया कम्पनी' ने तैयार किया था।

नाटक इंडिया कम्पनी की शुरुआत

नाटक इंडिया कम्पनी का जन्म पाँचवीं कक्षा के बच्चों को इतिहास पढ़ाने से हुआ। पाँचवीं कक्षा में यूरोपीय लोगों के भारत आने के बारे में एक पाठ था। वास्को ड गामा से शुरू होकर, व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी का आना, फिर अँग्रेज़ रानी का राज और दूसरे पाठ में स्वतंत्रता आन्दोलन। बहुत सारी घटनाएँ और बहुत सारे नाम थे इन दो पाठों में। बच्चों ने इनमें से गाँधी के अलावा और कोई नाम नहीं सुना था। मुझे अभी तक याद है कि मैडम कामा का नाम हमने भी पहली बार उन पाठों में पढ़ा था।

इसी अड़चन को दूर करने के लिए यह आइडिया आया कि क्यों न इन पाठों पर आधारित एक नाटक बना दिया जाए। 15 अगस्त भी आने वाला था तो सोचा कि इस नाटक को

स्वतंत्रता दिवस पर दिखा भी दिया जाएगा।

अब हमें लगा कि नाटक की टीम का एक नाम भी होना चाहिए। बच्चों से पूछा कि क्या नाम रखें। चूँकि पाठ की वजह से 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' नाम बच्चों के मुँह पर चढ़ गया था तो बातों-बातों में 'नाटक इंडिया कम्पनी' नाम का सुझाव आ गया। अच्छा ही तो था। यह कम्पनी देश में चल रहे नाटक को मंच पर दिखाएगी। इस तरह *आधारशिला* में हमारे घर के आंगन में चल रही बड़े बच्चों की इतिहास की क्लास में नाटक इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई। इसका पहला नाटक बना - भारत में अँग्रेज़ों का आना, जमना और उन्हें कैसे भगाया गया। नाटक का नाम शायद था ही नहीं। अँग्रेज़िया वाला नाटक कहते थे इसे। क्या बच्चों ने पहले कभी नाटक किया था? नहीं। क्या हमने कभी नाटक किया था या बनवाया था? नहीं! मज़ा आएगा, नया काम करने में। हाँ, हम दोनों ने नाटक देखे ज़रूर थे, और वो भी बहुत बेहतरीन किस्म के।

रोज़मर्रा की पढ़ाई में नया उत्साह

15 अगस्त को नाटक का मंचन किया गया। बच्चों को बहुत मज़ा आया। पहली बार वे ऐसा कुछ कर और देख रहे थे। 15 अगस्त के दिन बच्चों के माता-पिता भी आते थे। वे भी इसे देखकर गद-गद हो गए। किसी ने बताया कि उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनके बच्चे मंच पर चढ़कर कुछ बोलेंगे। इस पूरे इलाके में शायद यह पहली बार था जब आदिवासी बच्चों ने मंच से कुछ बोला, और आदिवासी बच्चों द्वारा नाटक करना तो पहली बार ही हुआ था। बच्चों के साथ-साथ हमें भी बहुत मज़ा आया और पढ़ाने जैसे रोज़मर्रा के काम को मज़ेदार बनाने का एक नया तरीका भी मिल गया।

ऐसी गतिविधियाँ बच्चों के लिए हमेशा महत्वपूर्ण समझी जाती हैं लेकिन हमें यह महसूस हुआ कि ये शिक्षकों के लिए भी उतनी ही ज़रूरी होती हैं। पढ़ाने का काम ऐसा है जिसमें आपको हर रोज़ क्लास में जाना है, बच्चों को रोज़ कुछ-न-कुछ पढ़ाना है और यदि आप तथाकथित वैकल्पिक स्कूल में हैं तो आपको रोज़ ही अपनी सृजनात्मकता का परिचय भी देना होता है। पढ़ाने के नए तरीके लगातार सोचते रहना पड़ते हैं। अगले साल फिर वही विषय उतनी ही लगन से पढ़ाना है क्योंकि बच्चे तो नए होंगे, वे तो पहली बार इस सबके बारे में सुन रहे होंगे। इस साल-दर-साल चलने वाले रुटीन से शिक्षकों का बोर होना स्वाभाविक है। नाटक मंचन के कारण *आधारशिला* के शिक्षकों को भी पढ़ाने से थोड़ी राहत मिल जाती थी और कुछ मज़ेदार अनुभव भी मिल जाते थे। हालाँकि, बाद में एक्स्ट्रा क्लास

लगाकर छूटी हुई पढ़ाई भी पूरी करवानी पड़ती थी।

नाटक इंडिया कम्पनी की शुरुआत तो इतिहास के पाठ सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें समझाने के लिए हुई थी लेकिन आगे बढ़ते हुए इसका स्वरूप कुछ बदल गया। बहुत सोचे-समझे तरीके से नहीं लेकिन *आधारशिला* को शुरू करने के पीछे जो मूलभूत बातें थीं, उनके चलते हम लोग नए मौके पकड़ लेते थे।

सामाजिक बदलाव का माध्यम

आधारशिला शिक्षण केन्द्र, समाज से जुड़ा हुआ स्कूल था। *आधारशिला* की पूरी कल्पना और उपज ही सामाजिक बदलाव के काम के एक हिस्से के रूप में हुई थी। इसकी टैग लाइन थी - एक नए समाज की मज़बूत नींव – आधारशिला। इसलिए इसे शुरू करने के पहले से ही यह आग्रह था कि शिक्षा का जो भी काम हो, वह एक ऐसे संगठन के माध्यम से हो जो सामाजिक परिवर्तन के काम में लगा हो। जो माँ-बाप समाज को बदलने की सोच से प्रेरित होंगे, उनके बच्चे भी जब स्कूल में उन्हीं विचारों को सुनेंगे तो उन्हें ये विचार अधिक स्वीकार्य होंगे।

'अँग्रेज़िया' नाटक में सबको बहुत मज़ा आया। करने वालों को, देखने वालों को और हमें भी। जब भी ऐसी सफलता मिलती तो हमें लगता कि बस, यही काम करते रहें। इसके अगले ही साल हमारे क्षेत्र के एक गाँव खुटवाड़ी में आदिवासी मुक्ति संगठन के एक सम्मेलन में हमने नाटक दिखाने के लिए कहा। संगठन के लोग भी खुश हो गए क्योंकि सम्मेलनों में अधिकतर रूखे-सूखे भाषण ही होते हैं। हमने इस इलाके की शिक्षा व्यवस्था के बारे में एक नाटक बनाया। नाटक में बताया गया कि कैसे बहुत आशाओं के साथ माता-पिता बच्चों को स्कूल भेजते हैं लेकिन पढ़ाई के निम्न स्तर के कारण उनकी ज़िन्दगी खराब हो जाती है और वे न घर के रहते हैं, न घाट के।

यह नाटक स्थानीय आदिवासी भाषा में था और स्कूलों व पढ़ाई को लेकर घरों में जो बातचीत होती थी, उन्हीं बातों को डायलॉग का रूप दे दिया गया था। इस क्षेत्र के लोगों ने भी पहली बार नाटक देखा था। छोटे-छोटे बच्चों को डायलॉग बोलते देखकर सब हतप्रभ थे। *आधारशिला* की तो अच्छी धाक जम गई। सम्मेलन के मुख्य अतिथि, उस समय के सांसद श्री दिलीप सिंह भूरिया थे। उन्होंने भी नाटक के उद्धरण देकर ही अपना भाषण दिया। अन्य वक्ताओं ने भी नाटक का ज़िक्र किया। इसके बाद इपटा के राज्य स्तरीय सम्मेलन के दौरान आनंदमोहन माथुर नाट्यग्रह, इन्दौर में इसी नाटक के हिन्दी संशोधित रूप का मंचन हुआ। पूरे नाटक में लोगों ने खूब ठहाके लगाए और अन्त में नाटक को *स्टैंडिंग*

ओवेशन मिला। किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि उन्हें हबीब तनवीर के नाटकों की याद आ गई। बाद में, इसे फोरम फॉर राइट टू एजुकेशन के राष्ट्रीय सम्मेलन में भोपाल में भी दिखाया गया।

वैश्विक मंच पर आदिवासी बच्चे

सामाजिक मुद्दों पर बात करने के लिए नाटक बहुत ही ज़बरदस्त माध्यम हैं, यह तो पता ही था लेकिन इस प्रस्तुति के बाद यह धारणा और पक्की हो गई। अगला मौका आया सन् 2004 में हुए वर्ल्ड सोशल फोरम (WSF) में जो बॉम्बे में होने वाला था। हमने सोचा कि क्यों न हम लोग वहाँ जाकर नाटक दिखाएँ। सही अन्दाज़ा लगाया, हम लोग बैठे-बैठे कुछ भी सोच लेते थे और फिर उसे करने में जुट जाते थे! कहीं-न-कहीं मन में यह बात रहती ही थी कि आदिवासी बच्चों की प्रतिभा को दुनिया के सामने कैसे लाएँ। पूरी दुनिया से लोग आएँगे। उनसे मिलना, उनके बारे में जानना और फिर बम्बई देखना। ऐसा मौका कैसे चूक सकते थे। बच्चों और शिक्षकों से इस पर बात की तो वे भी बहुत खुश हो गए।

इस नाटक में करीब 30-35 बच्चे थे। जब तक इसकी तैयारी चलती रही, तब तक स्कूल के सभी बच्चे नाटक से सम्बन्धित ही कुछ-न-कुछ करते रहे। शिक्षक छोटे बच्चों को बड़ी मुश्किल से कक्षाओं में बिठा पा रहे थे। इसका एक ही इलाज था कि वे भी नाटक बनाएँ। इसलिए शिक्षकों ने उनसे भी कुछ लोक कहानियों पर नाटक करवा दिए। इसमें बच्चे खुद को अलग-अलग भूमिकाओं में डालकर बात करते रहते थे। एक

नाटक में बच्चों ने अरण्डी के बड़े पत्ते को डण्ठल समेत लेकर, उसकी छतरी बना ली थी। इस प्रक्रिया में बच्चों और शिक्षकों, दोनों को उनकी सृजनात्मकता उभारने व प्रदर्शित करने का मौका मिला।

उस समय हमारे व अन्य देशों में उदारीकरण - निजीकरण - वैश्वीकरण की नीतियों का बोलबाला था। हमने सोचा कि इस उभरती वैश्विक अर्थव्यवस्था के गरीब वर्ग पर हो रहे असर के बारे में ही नाटक किया जाए। गाँव की स्थिति भी दिखेगी और इसका विश्लेषण भी। बम्बई जाना और इतने बड़े मंच पर नाटक दिखाना, बच्चों और हम सब के लिए एक बहुत ही रोमांचक अनुभव था। वर्ल्ड सोशल फोरम के लिए बच्चों को इटालवी भाषा का एक मशहूर प्रतिरोध गीत - 'उना मतीना' सिखाया गया, साथ ही, एक पुर्तगाली गीत भी सिखाया।

बम्बई जीप से जाना था। नाटक तो बन गया लेकिन जीप का किराया और रास्ते के खर्च के लिए पैसे कहाँ से आएँगे? अचानक पता चला कि वर्ल्ड सोशल फोरम में आने वाले कुछ लोग पहले से भारत आ रहे हैं और कोई संस्था या लोग, उन्हें भारत में चल रहे गाँव स्तर के आन्दोलन क्षेत्रों में दौरा करवा रहे हैं। हमें तुरन्त सूझा कि इनसे हमारा किराया निकल सकता है। हमने उन्हें *आधारशिला* आने का निमंत्रण दिया। आदिवासी बच्चों का एक ऐसा स्कूल जो सामाजिक बदलाव के लिए शिक्षा की भूमिका के बारे में सोच रहा है - इस बात से प्रभावित होकर उन लोगों ने आधारशिला को भी अपने रूट में जोड़ लिया। बच्चों ने दो जीपों के भाड़े के पैसे इकट्ठे करने के लिए पुराने कपड़ों के थैले, ग्रीटिंग कार्ड, रूमाल, ऊन के हैण्ड बैण्ड्स, जूट की सुतली के छोटे पाउच आदि सामान बनाए। जिस दिन उन्हें आना था, उस दिन *आधारशिला* में हाट की तरह जगह-जगह पर स्टॉल लगाए गए जिनमें बच्चों द्वारा सालभर में किया गया काम दर्शाया गया और साथ ही, उनके द्वारा बनाया गया हस्तकला सामान भी प्रदर्शित किया गया।

लगभग तीस मेहमानों के चार-पाँच समूह बनाए गए और बच्चे इन सभी समूहों को प्रदर्शनी दिखाने और स्कूल विज़िट कराने के लिए ले गए। महुए के नीचे आखिरी स्टॉल में एक चार्ट लगाया गया था जिसमें साकड़ से बम्बई तक के रास्ते का नक्शा बना था और दूरी लिखी हुई थी। उसके नीचे लिखा था कि अभी हमारे पास कितने किलोमीटर तक के लिए पैसे हैं। जैसा हमने सोचा था, वैसा ही हुआ - प्रदर्शनी देखने के बाद स्वतः ही कुछ लोगों ने पूछा कि क्या वे बचे हुए किलोमीटर की भरपाई कर सकते हैं? क्यों नहीं! देखते-ही-देखते पाँच सौ किलोमीटर के पैसे इकट्ठे हो गए।

विदेशियों के साथ बच्चों ने 'उना मतीना' गाया। उन्होंने भी बच्चों को अमरीका में परमाणु ऊर्जा के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में गाया गया एक गीत सिखाया जिसे बच्चों की एक कविता से रूपान्तरित किया गया था। सबने इसे नाचते हुए गाया। इस तरह हम लोग दो खटारा जीपों में बैठकर, रास्ते में पेट्रोल पम्प पर और नासिक में जहाँ रात रुके थे, वहाँ नाटक करते हुए बम्बई पहुँच गए। विशाल मंच पर नाटक दिखाया और गीत गाए। बच्चों को यह आयोजन, उनके इलाके में होली के पहले लगने वाले भगोरिया मेले की तरह लगा। वंदू ने कहा कि ऐसे तो नई दुनिया नहीं बन सकेगी!! दूसरी ओर WSF के वैकल्पिक आयोजन ने उन्हें अधिक प्रभावित किया जहाँ लोग एक पण्डाल में बैठकर मंच पर चल रहे कार्यक्रम को देख रहे थे। वहाँ पहली बार आंध्र प्रदेश के मशहूर जनगायक, गदर को देखा और सुना। बड़े बच्चों से कॉपी-पेन साथ में रखने को कहा गया था। बच्चों ने नए लोगों के नाम-पते लिखे और उनसे कुछ बातें कीं । इस तरह मज़ा करते हुए हम लोग बम्बई घूमकर आ गए। बच्चों ने बहुत कुछ देखा और सुना। वे दुनिया देखकर आ गए!

नाटक का सामूहिक सृजन व टीमवर्क

वर्ल्ड सोशल फोरम के लिए नाटक बनाते समय एक विधा विकसित हुई, जिसे हमने बाद के सभी नाटकों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया। असल में, शिक्षा का पहला नाटक भी ऐसे ही बना था, लेकिन इस बार हमने उसे और व्यवस्थित तरीके से तैयार किया। पहले बच्चों को निजीकरण आदि का मुद्दा समझाया गया, और उनसे गाँव पर इसके असर के बारे में पूछा। बच्चों ने कई उदाहरण सोचे। उसी समय गाँव में कहीं-कहीं मज़दूरों के बदले बुलडोज़र से काम होना शुरू हो गया था। बच्चों के लिए यह एक बहुत आकर्षक चीज़ थी। इसके अलावा, व्यक्तिवादी व्यवहार के बारे में बहुत सारे उदाहरण आए कि कैसे सामूहिकता और एक-दूसरे की मदद

करने के व्यवहार में कमी आई है। विज्ञापनों की भी बात हुई। एक बच्चा अखबार से एक कुपोषित महिला की फोटो लेकर आया। असल में, वो बिकिनी पहने हुए एक मॉडल का फोटो था जिसे बच्चों ने तिनटुकिया नाम दिया। तिनटुकिया वाला किस्सा नाटक में भी आ गया। बच्चे जो भी बातें बताते, उसे नाटक के माध्यम से भी दिखाते। धीरे-धीरे कुछ दिनों में बहुत-से सीन बन गए। इन्हें क्रम में पिरोने का काम साथ-साथ होता रहा। रोज़ कोई नया सीन जुड़ता और क्रम बदल जाता था।

हमारे हर नाटक में, समस्या दिखाने के बाद, उसके निदान को लेकर कुछ सुझाव ज़रूर होते थे। यह स्थिति कैसे बदली जा सकती है, इस पर भी बच्चे विचार करते थे। बच्चों के साथ किसी भी विषय पर बातचीत करने के लिए नाटक एक बहुत अच्छा माध्यम बना। नाटक का फायदा यह था कि बातचीत हवा में नहीं होती थी बल्कि आदिवासियों की ज़िन्दगी में जो चल रहा था, उसके उदाहरणों पर आधारित होती थी। साथ ही, नाटक के डायलॉग भी घरों में चलने वाली बातों पर आधारित होते थे।

इस नाटक के लिए स्कूल के सब बच्चे और शिक्षक काम में लग गए थे। बहुत-से कॉस्ट्यूम और प्रॉप्स बने। सबने अपने-अपने डायलॉग लिखे और उन्हें क्रम से जोड़कर पूरी स्क्रिप्ट तैयार की गई। शिक्षकों के साथ दो-तीन बड़े बच्चों को मैनेजर बनाया गया जो कलाकारों को समय-समय पर प्रॉप्स देते रहते थे। इस नाटक में बेमिसाल टीम वर्क देखने को मिला – इतने बड़े मैदान में छोटे बच्चों को बड़ों द्वारा सम्भालना, एक-साथ रहना ताकि कोई खो न जाए।

हर कदम पर बहुत सावधानी की ज़रूरत थी।

अनुभव से सीखने की प्रक्रिया

आलीराजपुर में रहते हुए हमने क्यूबन शिक्षा व्यवस्था पर एक किताब पढ़ी थी। उसका एक आइडिया जो हमें याद रह गया, कि गाँव का स्कूल एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ गाँव में चल रहे हर काम के बारे में नवाचार के प्रयोग हो पाएँ – a school should be a fountainhead of new ideas.

इस आइडिया के चलते, हम स्कूल में वह सब करने की कोशिश करते, जो गाँव में मौजूद होता है जैसे जानवर पालना, खेती करना, मुर्गी पालन, चूल्हे पर ज्वार-मक्के की रोटी बनाना आदि। इन सब कामों को नवाचार के साथ किया जाता था। इसके अलावा, गाँव की समस्याओं से बच्चों को जोड़ना, हमने स्कूल की पाठ्यचर्या का एक प्रमुख सिद्धान्त बना दिया था। इसके लिए समय-समय पर बड़े बच्चों के साथ बातचीत भी होती रहती थी। अलग-अलग विषयों को समझने के लिए सर्वे व गाँव के लोगों से भी बहुत सारी बातचीत होती थी। नाटक बनने की इस प्रक्रिया में विषय सम्बन्धित मुद्दों को समझने की दृष्टि से, और उनसे जुड़ाव बनाने के लिए बच्चों से बहुत सहज रूप से बात हो जाती थी। चूँकि नाटक के विषय अमूमन स्थानीय समस्याओं पर ही आधारित होते थे, बच्चों को नाटक के माध्यम से ग्रामीण जीवन के बारे में सोचने का भरपूर मौका मिलता था।

नाटकों का लोगों पर प्रभाव

नाटकों को गाँव में दिखाना भी एक काम बन जाता था। ऐसे तीन नाटक बने जिन्हें गाँवों में घूम-घूमकर दिखाया गया। कुपोषण, महिलाओं पर घरेलू हिंसा व ग्राम सभा पर बने नाटकों को कुल मिलाकर 25-30 गाँवों में दिखाया गया। एक दिन गाँव का एक आदमी मिला जिसने कहा, "अरे, बच्चों की बात सुनकर मैंने अपनी पत्नी पर चिल्लाना बन्द कर दिया। बहुत अच्छी बात बता रहे थे बच्चे।" इस आदमी ने रात को प्रदर्शित किए गए नाटक में बच्चों की बात सुनी थी। नाटक का नाम था 'गाड़ान दुई चाकटा' - गाड़ी के दो पहिए। इस नाटक में एक आदमी की कहानी बताई गई थी। जब उसकी पत्नी अपने पति द्वारा पिटाई से नाराज़ होकर मायके चली जाती है और जब उसे ही घर के सारे काम करने पड़ते हैं तब उसे पत्नी का महत्व समझ में आता है। दिनभर भागते हुए जब वह थक जाता है तो शाम को पत्नी के मायके जाकर उससे माफी माँगता है और वापिस घर लेकर आता है। (यह ज़रूर है कि केवल काम की दृष्टि से ही उसे पत्नी का महत्व समझ आया।)

नाटक रात को होता था तो गाँव

की महिलाएँ भी देखने आती थीं और हँसी से लोट-पोट हो जाती थीं। इसके डायलॉग भी बच्चों ने ही बनाए थे। जैसा वे सुनते थे, वैसा-का-वैसा मंच पर बोल देते थे। ऐसे डायलॉग सुनकर आदमियों को बहुत शर्म आई। यह नाटक बहुत हिट हुआ। इसमें महिला का किरदार एक लड़का निभाता था। नाटक के बाद, उसे सब महिलाएँ देखने आती थीं और बहुत हँसती थीं।

एक दिन कुपोषण विषय पर कठपुतली नाटक दिखाया गया। नाटक देखने के बाद, चर्चा के दौरान एक महिला ने बताया कि जैसा नाटक में दिखाया गया है, वैसे ही जब वो प्रेगनेंट थी और खाने के लिए फल आदि चीज़ें माँगती थी तो घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ कहती थीं कि आजकल की लड़कियाँ बहुत नखरे करती हैं। उनके ज़माने में तो औरतें आठ-दस बच्चे पैदा कर देती थीं और सारे काम भी करती रहती थीं। उसके इतना बोलने पर, वहीं उसकी सास भी खड़ी हो गई और उनका आपस में झगड़ा हो गया। नाटक में, माँ बनने वाली महिलाओं को पोषक आहार देने की बात बताई गई थी और इस सम्बन्ध में पारम्परिक सोच को भी दर्शाया गया था। बच्चों को भी समझ में आया कि उनके जीवन में विज्ञान द्वारा सिद्ध की गई बातों का उपयोग है और वे जीवन के रोज़मर्रा के कामों से विज्ञान का जुड़ाव बना पा रहे थे।

कठपुतली नाटक की आठ दिवसीय कार्यशाला में बच्चों ने पहली बार कठपुतली देखी, उसे चलाना सीखा जिसमें हाथ और मुँह एक-साथ चलाने पड़ते हैं। इसके लिए ज़बर्दस्त तालमेल की ज़रूरत थी। कार्यशाला के लिए दो मशहूर कलाकारों को बुलाया गया था। बच्चे कठपुतली

बनाना भी सीख रहे थे। नाटक की स्क्रिप्ट भी बातचीत के माध्यम से साथ-साथ बनती जा रही थी। दो कठपुतली नाटक और बने - सफदर हाशमी का 'बाँसुरीवाला' और 'कद्दू में बैठकर एक बुढ़िया जंगल में कैसे जाती है'। छोटे बच्चे तो इन्हें देखकर खुशी से अत्यन्त उत्तेजित हो जाते थे।

ग्राम सभा नाटक ने तो बहुत ही बवाल खड़ा कर दिया था। ग्राम सभा नाटक जिन लड़कों ने तैयार किया था, वे उस नाटक को देखने वालों की तुलना में ज़्यादा जोश में आ गए थे। इस विषय पर आयोजित शिविरों का भी उन पर असर था। नाटक के दौरान एक बहुत आश्चर्यजनक बात पता चली कि कॉलेज जाने वाले अधिकतर लड़कों को ग्राम सभा के बारे में कुछ पता ही नहीं था। बहुत-से लड़के इसके बारे में पहली बार सुन रहे थे। उन्हें केवल इतना ही पता था कि नाना प्रकार के प्रमाण पत्रों के लिए पंचायत के सरपंच और पंचायत सचिव के हस्ताक्षर लेने पड़ते हैं। उन्हें यह बिलकुल नहीं मालूम था कि गाँव की योजनाएँ ग्राम सभा में बनाई जाती हैं, और यह भी वहीं तय होता है कि किसको योजना का लाभ मिलेगा। लड़के जोश में आकर पहली बार ग्राम सभा की मीटिंग में पहुँचे। उन्होंने देखा कि दो-चार लोग ही मीटिंग में बैठे हैं जबकि साल में चार दिन इन ग्राम सभाओं में गाँव के समस्त वयस्कों को इकट्ठा होना चाहिए। लड़कों को देखते ही सरपंच और मंत्री बिदक गए। लड़कों ने अपनी माँगें रखीं और उनके बीच तना-तनी हो गई। एक गाँव में तो हाथापाई तक की नौबत आ गई थी। नाटक में दर्शाए गए दृश्य हकीकत में बदल गए।

इसी तरह एक नाटक स्वास्थ्य की स्थिति पर बना जिसे जन स्वास्थ्य अभियान के एक कार्यक्रम में दिखाया गया। इस नाटक के मंचन में भारत

के नक्शे पर सैलाइन की बोतल को लटका दिया गया था, जिसे देखकर दर्शकों को बहुत मज़ा आया। साथ ही, सन्देश भी बहुत स्पष्ट मिला।

लोक शिक्षण में नाटक की शुरुआत

इन सब घटनाओं से नाटक की शैक्षणिक भूमिका स्पष्ट होती है। इस समय यह बता देना उचित होगा कि *आधारशिला* हालाँकि बच्चों की शिक्षा के लिए ही जाना जाता है लेकिन इसकी कहानी वयस्कों के शिक्षण से शुरू हुई थी। 80 और 90 के दशक में आलीराजपुर में खेड़ुत मज़दूर चेतना संगठ (खे.म.चे.स.) के माध्यम से चेतना जागृति के काम में लोक शिक्षण हमारा मूल काम था। उस समय प्रौढ़ शिक्षा पर बहुत ज़ोर था। प्रौढ़ शिक्षा के बहुत-से प्राइमर प्रचलित थे लेकिन वे सब पढ़ाई-लिखाई से सम्बन्धित थे। खे.म.चे.स. का शिक्षण लिखाई-पढ़ाई वाला नहीं था। वह तो हकों के बारे में, कानूनों की जानकारी, आदिवासियों के शोषण को समझना, समाज में व्याप्त विभिन्न असमानताओं को समझना और इन सब हालातों को बदलने के तरीके सोचने के बारे में था।

पॉलो फ्रेअर की किताब *पेडागॉजी ऑफ़ द ऑप्रेस्ड* की बातें हमें बहुत काम की लगती थीं। लोगों के साथ वार्तालाप इसका एक मुख्य तरीका था। इस वार्तालाप के लिए नाटक का उपयोग हम वहाँ भी करते थे। उसमें रोल प्ले अधिक होता था। अपने जीवन की व्यथा और खुशियों को मंच पर, अपनी भाषा में देखते-सुनते समय लोग आइने में एक तरह से अपना जीवन देख रहे होते हैं। तब वे इसे एक बाहरी व्यक्ति की तरह देखकर, इस पर विचार करने के लिए प्रेरित होते हैं। चूँकि नाटक इंडिया कम्पनी के कलाकार आदिवासी बच्चे और युवा होते थे, इसलिए नाटक के विषय भी अमूमन उनके जीवन के ही विषय होते थे। इसलिए वे भी इन मुद्दों के बारे में सोचने के लिए बाध्य हो जाते थे। जागृति के काम का यह एक बेहतरीन तरीका है जिसमें लोग अपने जीवन के बारे में बात करते हैं और इन बातों को करते व सुनते हुए जो पीड़ा या गुस्सा महसूस होता है, उसी से कोई रास्ता निकालने की प्रेरणा पैदा होती है।

मज़ा बनाम अनुशासन

नाटक इंडिया कम्पनी में विषय आधारित स्क्रिप्ट विकसित करने में तो हमने मास्टरी हासिल कर ली थी। विभिन्न तरह के नाटक देखने की वजह से मंच सज्जा और सीन के कॉम्पोज़िशन आदि का कुछ अन्दाज़ा तो हम दोनों को था ही। पूना और दिल्ली में देखे हुए नाटकों की छवियाँ तो हम दोनों के दिमाग में ज़रूर थीं, लेकिन हमें लगा कि यदि कुछ रंगकर्मियों को बुलाकर बच्चों को

प्रशिक्षित कर दिया जाए तो कलाकारी पक्ष और मज़बूत हो जाएगा जो अक्सर थोड़ा कमज़ोर रह जाता था। इसके लिए सबसे पहले हमने 'थिएटर इन एजुकेशन' से जुड़े कुछ साथियों को बुलाया जिन्होंने बच्चों के साथ एक पूरा सप्ताह बिताया और पूरे स्कूल के बच्चों को बहुत ही खुश कर दिया। बच्चों से नाटक से सम्बन्धित बहुत-सी एक्सरसाइज़ करवाई गईं। इससे बच्चों ने अपने शरीर को नाटक में इस्तेमाल करना सीखा। आत्मविश्वास और खुलकर बात करना तो इन गतिविधियों से बच्चों में आ ही जाता है। उस समय पर्सनैलिटी डेवेलपमेंट के लिए नाटक की विधियों का प्रयोग आम चलन में नहीं था।

बाद में, अलग-अलग लोगों ने आकर बच्चों के साथ नाटक बनवाए जिसके तहत इन्दौर के रंगकर्मी और कलकत्ता के स्वभाव ग्रुप के साथियों ने भी आकर बच्चों से नाटक करवाया। भोपाल से एन.एस.डी. जाकर पढ़े छात्रों ने भी नाटक में मदद की। यह करते हुए हमें समझ में आया कि जिन लोगों के लिए नाटक एक प्रोफेशन होता है, वे इसे लेकर बहुत गम्भीर होते हैं। रिहर्सल के दौरन हँसी-मज़ाक और मज़े की कोई भूमिका नहीं होती। एक प्रतिष्ठित नाटककार के शिविर में तो बहुत-से बच्चे रो दिए। कई बच्चे नाटक क्लास से भाग जाते। फिर हम उन्हें समझा-बुझाकर क्लास में वापिस भेजते। नाटक तो बन गया लेकिन मज़ा नहीं आया। कहाँ तो बच्चे नाटक में भाग लेने के लिए बेताब रहते थे और अब वे नाटक से भागने लगे थे। स्कूल के समय नाटक के लिए रिजेक्ट होने के हमारे बुरे अनुभवों के कारण, हमारा यही प्रयास होता था कि अधिक-से-अधिक बच्चे नाटक में भाग ले सकें।

असल में, हम दोनों को बहुत-से काम खुद से करने की आदत थी। सृजनात्मकता के काम करने में मन भी लगता था और काम हो भी जाते थे। सृजनात्मक माता-पिता होने के कारण - घर सजाना, पत्रिका निकालना, रंगोली बनाना, नाटक, संगीत, क्राफ्ट, कपड़ा सिलाई, तरह-तरह के व्यंजन बनाना – बीसियों कामों का अनुभव था। हमें ऐसा खयाल भी नहीं आता था कि किसी काम को करने के लिए कोई प्रोफेशनल चाहिए ही है। जो भी हो, हम उसमें भिड़ जाते थे। शुरुआती दिन तिलोनिया के 'समाज कार्य एवं अनुसंधान केन्द्र' में बिताने के कारण भी हमें यह समझ में आया कि जो लोग व साधन उपलब्ध हैं, उन्हीं से काम ले लो। वहाँ के निदेशक बंकर रॉय का अटूट विश्वास था कि स्थानीय लोग सीखकर सब कुछ कर सकते हैं। उस संस्था में कोई भी काम किसी मध्यमवर्गीय प्रोफेशनल के न होने के कारण नहीं रुका। हमें यह बात बहुत सही लगी। बहुत बार लोग

हमसे पूछते थे कि क्या हमारे पास समाज कार्य करने की कोई डिग्री है?

एक बार एक बुज़ुर्ग नाटककार मित्र को तो बुरा ही लग गया जब हम अपने नाटक की कहानी बच्चों के साथ मिलकर बनाने की बात उन्हें बहुत जोश में बता रहे थे। उन्हें यह गवारा ही नहीं हुआ कि कोई भी नौसिखिया नाटक बना सकता है, वो भी ऐसी विधि से जिसे वे इम्प्रोवाइज़ेशन के नाम से जानते थे। नाटक की दुनिया में भी इसे गिने-चुने लोग ही करते थे और वे इसमें बहुत तुर्रम खाँ माने जाते थे।

आदिवासी संघर्ष व एकता की गूँज

खैर, एक और नाटक की बात करके हम बात को खत्म करेंगे। पश्चिम भारत की आदिवासी पट्टी चार राज्यों में बँटी हुई है - महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान। हर साल 13 जनवरी को इन चार राज्यों के आदिवासी बड़ी संख्या में आदिवासी सांस्कृतिक महासम्मेलन के लिए इकट्ठा होते हैं। यह सम्मेलन बारी-बारी से, चारों राज्यों में होता है। उस साल यह सम्मेलन हमारे बहुत पास के सेंधवा शहर में होना था। हमने आयोजकों से कहा कि हम लोग बच्चों का एक नाटक लाना चाहते हैं। सम्मेलन में नाटक तो पहले कभी नहीं हुआ था, लेकिन सांस्कृतिक कार्यक्रम में नाटक दिखाने की अनुमति मिल गई। बस, फिर क्या था।

हम सब नाटक की तैयारी में लग गए। लगभग 15-20 दिनों तक तैयारियाँ चलीं।

नाटक शुरू होते ही जमूरे ने मंच पर आकर ऐलान किया - भारत की मशहूर नाटक इंडिया कम्पनी आपके सामने पेश कर रही है, आदिवासी जीवन की झलकियाँ दिखाता नाटक - 'हम कहाँ जा रहे हैं?'। नाटक के पहले भाग में पुरानी आदिवासी जीवन की झलकियाँ दिखाई गईं जिनमें लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं, सामूहिकता है, एकता है, जड़ी-बूटियों का ज्ञान है। दूसरे भाग में आदिवासियों पर अलग-अलग खिंचाव दिखाए गए। एक तरफ राजनीति खींच रही है तो दूसरी तरफ धर्म। एक तरफ बाज़ार खींच रहा है तो दूसरी ओर शराब। कुल मिलाकर, यह दर्शाया गया कि कैसे इन सबके कारण समाज में टूटन हो रही है। अन्तिम भाग में आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों को याद करते हुए दर्शकों को यह सोचने के लिए उकसाया गया कि कैसे हमें फिर से समाज के महत्वपूर्ण एवं प्रगतिशील मूल्यों को स्थापित करना है और एकता से रहना है।

यह नाटक सम्मेलन में बहुत हिट हुआ और अगले दो-तीन सालों तक इसे दिखाया गया। लेकिन अन्तर यह था कि दूसरे साल से इसे *ऑन डिमांड* दिखाया गया। चूँकि यह नाटक स्थानीय भाषा में था और अन्य नाटकों की तरह इसके डायलॉग भी गाँव के लोगों के मुहावरों से ही बने थे, लोगों को इसके डायलॉग रट गए। बहुत-से लोगों ने बताया कि जो बातें दिनभर के लम्बे-लम्बे भाषणों से नहीं समझ आईं, वे बातें बच्चों ने एक नाटक के ज़रिए सबके दिमाग में फिट कर दीं। विभिन्न सम्मेलनों के दौरान एक लाख से अधिक लोगों ने इस नाटक को देखा।

इन सभी नाटकों के लिए बच्चों ने कॉस्ट्यूम बनाए, प्रॉप्स बनाए और डायलॉग भी लिखे। एक बड़े लड़के ने लाइटिंग की व्यवस्था की। एक सीन में रंगीन लाइट फेंकने की जुगाड़ की। जानवरों और इन्सानों के मास्क बनाए गए। सालभर चलने वाली क्राफ्ट क्लास के सारे गुर यहाँ काम आ जाते थे। इसके चलते कुछ बच्चे सिलाई मशीन भी चलाना सीख गए। नाटकों में पार्श्व संगीत देने के लिए, मोबाइल में एक क्रम से गीत व आवाज़ें रिकॉर्ड करके निश्चित समय पर बजा दिए जाते थे। दो-तीन तकनीकी दिमाग वाले लोग इसकी तैयारी करते थे। जंगल के दृश्य में चिड़ियों की आवाज़ें ज़रूर सुनाई देती थीं।

फण्ड रेज़िंग का ज़रिया भी

आधारशिला लर्निंग सेन्टर छह एकड़ ज़मीन पर बना हुआ था और यहाँ लगभग 150 से 200 बच्चे रहते थे। जैसा पहले भी एक लेख में बताया जा चुका है, इसके 22 वर्षों के

जीवनकाल में इसे चलाने के लिए कभी संस्थागत पैसे नहीं लिए गए। यह बच्चों के माता-पिता द्वारा दी गई फीस, दाल, अनाज व लोगों की मदद से चलता था। आर्थिक मदद गाँवों से भी मिलती थी और शहरों में रहने वाले लोगों से भी। बच्चे क्राफ्ट का सामान बनाते थे, जिन्हें बेचकर भी कुछ पैसे इकट्ठे किए जाते थे। ज़्यादा ज़मीन लेने का मकसद भी यही था कि इस पर जैविक विधि से सब्ज़ियाँ उगाई जाएँ। हम हर वक्त यही विचार करते रहते थे कि इस जगह को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी कैसे बनाएँ।

इसमें नाटक की भी एक भूमिका थी। जब सम्मेलनों में नाटक ले जाते थे तो नाटक के तुरन्त बाद लोग खुश होकर इनाम देते थे जिसकी घोषणा माइक पर की जाती थी। एक नाटक में 8 से 15 हज़ार रुपए तक इनाम मिल जाता था। साथ ही, हम लोग सम्मेलन में बची हुइ सामग्री को स्कूल के लिए ले आते थे। इसमें लकड़ी, चावल, दाल, राशन आदि मिल जाता था। एक बार *एकलव्य* संस्था की मदद से, भोपाल के एक प्राइवेट स्कूल में नृत्य नाटिका की प्रस्तुति करके बच्चों से रद्दी लाने की गुज़ारिश की गई। इसमें कमरा भर के रद्दी इकट्ठी हो गई जिसे बेचकर मिले पैसों को स्कूल के लिए इस्तेमाल किया गया। रद्दी के साथ-साथ बच्चों के घरवालों ने और भी कुछ सामान दे दिए थे। इसके अलावा, दो साल तक नाटक टीम को उन गाँवों में भेजा गया जहाँ से बच्चे आते थे। वहाँ उनके घरवालों को और संगठन के कार्यकर्ताओं के माध्यम से गाँव के समस्त लोगों को बच्चे रात में नाटक दिखाते थे, गीत गाते थे और स्कूल के बारे में बताते थे। अन्त में कहते थे कि सवेरे हम आपके घर आएँगे, आप जो भी देना चाहें, दे दीजिएगा। बच्चे पूरे गाँव में थैले लेकर घूमते थे और लोग उन्हें कुछ अनाज-दाल दे देते थे। यह स्कूल संगठन द्वारा बनाया गया है, इस बात

को लोग जानते थे, और कार्यकर्ता भी साथ में रहते थे इसलिए लोग खुशी से कुछ-न-कुछ दे देते थे। गाँव में बहुत तरह के लोग माँगने आते थे। उनमें हमारा भी नाम जुड़ गया।

* * *

आप सोच रहे होंगे कि यह कब बताया जाएगा कि नाटक का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है।

चलिए, मास्टरों के अन्दाज़ में आपको भी होमवर्क दे देते हैं। इस लेख में जो बताया गया है, उसके आधार पर सोचिए कि यह सब करते हुए बच्चों ने क्या-क्या सीखा होगा और उसकी सूची बनाइए। आपको अपने आप ही शिक्षा में नाटक का महत्व समझ में आ जाएगा। वैसे बी.एड. के छात्रों के लिए यह बहुत अच्छी गतिविधि होगी। यह भी अध्यापन की एक पुरानी विधा है - जब शिक्षक थक जाए या पढ़ाने का मन न हो तो बच्चों को करने के लिए कुछ काम दे दो। लेकिन मज़ाक से हटकर, यदि आप सच में इस लेख से एक सूची बनाएँगे कि बच्चों ने नाटकों के दौरान क्या-क्या जाना और क्या-क्या करना सीखा, तो आप भी अचम्भित रह जाएँगे। और यह भी पता चल जाएगा कि किन बातों को आप 'सीखना' समझते हैं और कौन-से काम आपने लिस्ट में नहीं डाले। लिस्ट बनाकर हमसे भी साझा करें। लिस्ट में यह ज़रूर लिखिएगा कि नाटकों के कारण बच्चों को *आधारशिला* में बहुत खुशी और हँसने के मौके मिले। यह बहुत ज़रूरी है। बच्चों को खुशी देना, अपने आप में बहुत बड़ा काम है।

"नाटक का पर्दा यहीं गिराते हैं। अब आप लोग ताली बजा सकते हैं। और यदि आप लोग *आधारशिला* के बारे में और जानना चाहते हैं, या इसे किसी भी तरह से सहयोग करना चाहते हैं, या अपने इलाके में ऐसा स्कूल खोलना चाहते हैं तो हमसे सम्पर्क करें। नम्बर नोट कर लें - जयश्री- 8889289196. अमित- 8527803272." प्रत्येक नाटक के अन्त में यह डायलॉग बोला जाता था क्योंकि पर्दा तो होता ही नहीं था!

इसी *आधारशिला* का आधारभूत ढाँचा अब प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में काम करता है और सबके लिए उपलब्ध है।

अमित और जयश्री: लगभग तीन दशकों से पश्चिम मध्य प्रदेश में भील, भीलाला और बारेला आदिवासियों के बीच में रह रहे हैं। साथ ही, खेडुत मज़दूर चेतना संगठ, नर्मदा बचाओ आन्दोलन व पश्चिम भारत प्रवासी मज़दूर संघ के साथ-साथ आदिवासियों के अन्य संघर्षों के साथ भी खड़े हैं। 1998 से आदिवासी बच्चों व युवाओं की शिक्षा के लिए काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: आधारशिला शिक्षण केन्द्र।

पुराने समय के दो शहर

प्रकाश कान्त

इतिहास में मनुष्य का एक जगह बसना भी कई कारणों, ज़रूरतों और सहूलियतों के कारण सम्भव हो पाया। गुफाएँ, नदी किनारे की छोटी झोपड़ियाँ, छोटी बस्तियाँ, छोटे गाँव, बड़े गाँव, नगर और महानगर! मनुष्य के एक जगह बसते जाने की यात्रा! पाठों में अलग-अलग जगह आए ब्यौरों व चित्रों के माध्यम से इस यात्रा के विविध चरणों को मैंने समझाने का प्रयास किया। गाँव के बसने की शुरुआत के बारे में बच्चों ने कक्षा छठी में जाना-समझा था। सातवीं में आकर 'गाँव-ही-गाँव, खेत-ही-खेत' पाठ में इसे और विस्तार से समझा। नए-पुराने शहरों के बारे में इसी क्रम में वे जानते गए। इसी तरह छठी कक्षा के चुने या नियुक्त किए राजा से लेकर आठवीं कक्षा में आए सम्राटों, सुल्तानों, बादशाहों के बारे में चर्चा करते वक्त मैंने इनमें निहित सत्ता में आ रहे परिवर्तनों को भी स्पष्ट करना चाहा। साथ ही, राजवंशों के बनने की प्रक्रिया के बारे में भी!

इतिहास के स्रोत

मैंने प्रशिक्षणों के समय भी गौर किया था और पढ़ाते वक्त भी देखा कि इतिहास के पाठ विभिन्न कालखण्डों की बात करते हुए यह भी बताते थे कि उनके बारे में जानकारियाँ इतिहास जानने के किन माध्यमों से हासिल हुई थीं। खुदाई में मिले सिक्के, बरतन, मूर्तियाँ, इमारतों के अवशेष, पुरानी किताबें वगैरह! सातवीं में बच्चों को एक पाठ ऐसा भी पढ़ने को मिला जिसमें एक पुराने गाँव के बारे में जानकारियाँ उस गाँव के पुराने मन्दिर की दीवारों पर खुदी घटनाओं के आधार पर मिली थीं। उस गाँव में घटित होने वाली हर महत्वपूर्ण घटना को मन्दिर की दीवार पर अंकित कर दिया जाता था। बच्चों के साथ-साथ यह चीज़ मेरे लिए भी नई थी। पहले कभी कल्पना नहीं की थी कि कोई गाँव कभी अपने बिलकुल ताज़ा इतिहास को इस तरह से गाँव की सबसे पवित्र मानी जाने वाली जगह पर संरक्षित करता होगा! मैं यह बात भी समझ रहा था कि इतिहास के ये पाठ बच्चों में इस बात की आदत डालना चाहते हैं कि वे अपने आसपास की चीज़ों को किस तरह से देखें। साँची के स्तूप के आसपास बनी रेलिंग के ज़रिए यह बात थोड़ी साफ तौर पर समझायी जा सकी। उन्होंने देखा कि शुरू-शुरू में लकड़ी के मकान बनाने में जिस

उस पुराने समय के किसानों ने भी अपने अनुभव से अपने यहां की ज़मीन के अनुसार सिंचाई की विधियां ढूंढ ली थीं।

पानी खींचने के यंत्र

किसानों ने कुओं से पानी खींचने के तरीके भी ढूंढे। इसके लिए किसानों ने तरह-तरह के यंत्र बनाए। सबसे पहले शायद ढेंकली का उपयोग हुआ।

ढेंकली से पानी कैसे उठाया जाता है चित्र-4 से समझो।

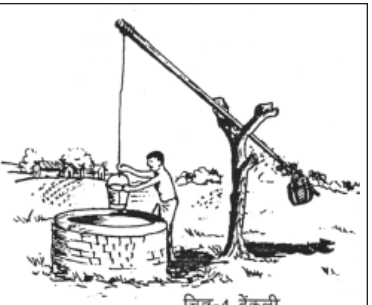

चित्र-4 ढेंकली

चित्र - 5 मोठ

फिर बैलों को जोतकर मोठ से पानी खींचा जाने लगा।

क्या तुम्हारे यहां ढेंकली और मोठ का उपयोग हुआ करता था? पता करो।

पुराने समय में तो ये ही सिंचाई के यंत्र थे। लोग लगातार बेहतर यंत्र बनाने की कोशिश करते रहे। एक नया यंत्र बना अरघट्ट।

अरघट्ट से पानी कैसे खींचा जाता था चित्र-6 देख कर समझो।

क्या तुम्हारे आसपास इस यंत्र का उपयोग होता था? इसे तुम्हारे क्षेत्र में क्या कहा जाता था?

सिंचाई के इन साधनों को बनाने और लगवाने में बहुत मेहनत और धन खर्च होता था। अधिकतर गांव के धनी लोग ही ये साधन जुटा पाते थे। बहुत से किसान बिना सिंचाई के ही खेती किया करते होंगे जैसे कि आज भी करते हैं।

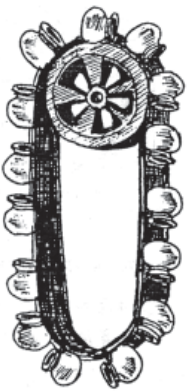

चित्र-6 अरघट्ट

चित्र-1: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'गाँव ही गाँव, खेत ही खेत' का एक पेज।*

विधि का उपयोग किया जाता था, उसी का उपयोग बाद में पत्थरों की इमारत बनाने में भी किया जाने लगा। बिना जोड़े एक-दूसरे में फँसाने की विधि! मैंने जब उनसे तलाश करके लाने को कहा कि क्या आज भी इस विधि का उपयोग होता है तो बच्चे अगले ही दिन पता कर आए कि

आज भी गाँव में खटिया, तिपाई, दरवाज़ों की बारसाक (चौखट) जैसी कई चीज़ें बनाने में इसी तरीके का इस्तेमाल होता है। बिना कील वगैरह के जोड़ना! इन उदाहरणों के द्वारा उनकी यह भी समझ बनी कि बहुत सारे कौशल, विधियाँ और तकनीकें जो शुरू के इन्सान ने इजाद किए थे, वे उसी मूल रूप में या थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आज भी काम में लाए जा रहे हैं। इन सब में, मैं इस बात की समझ बनाने की कोशिश कर रहा था कि ऐतिहासिक विकासक्रम में मनुष्य अपने काम के तरीके किस तरह बदल रहा था, किस तरह पुराने तरीके उन बदलावों की ज़मीन तैयार कर रहे थे और कैसे कुछ पुराने तरीके अब भी चलन में थे।

इतिहास शिक्षण में विविधता की समझ

भारत जैसे महादेश में किसी भी दौर की सामाजिक संरचनाएँ सभी जगह एक-जैसी नहीं हो सकती थीं। उनमें विविधता होनी ही थी। ये विविधताएँ लम्बे विकासक्रम में अस्तित्व में आई थीं। और उनके अपने भौगोलिक-सांस्कृतिक कारण थे जिन्हें जानना आज के बहुत-से धुँधलकों को साफ करने में सहायक हो सकता है। सातवीं के इतिहास में 'उत्तर भारत के गाँव और भोगपति' तथा 'दक्षिण भारत के गाँव' जैसे दो महत्वपूर्ण पाठ इस सिलसिले में काफी सुलभ सामग्री उपलब्ध करवाते थे। उत्तर और दक्षिण के गाँवों की सामाजिक संरचनाएँ, प्रशासकीय प्रबन्धन इत्यादि के फर्क और विशिष्टता को इन पाठों ने बच्चों के स्तर के अनुसार बेहतर ढंग से स्पष्ट किया था। 'एक पुराना शहर सियडोणि' जैसे पाठ में तो 900 साल पुराने शहरों के प्रबन्धन और आर्थिक क्रियाकलापों की बहुत छोटे-छोटे लेकिन रुचिकर ब्यौरों के साथ जानकारी दी गई थी। पूरा पाठ वहाँ मिले एक बड़े शिलालेख में दर्ज जानकारियों के छोटे-छोटे अंशों के साथ आगे बढ़ता है। इसके ज़रिए, उस समय के लोगों के नाम, उनके व्यवसाय और शहर की बसाहट की जानकारी उभरती है। सबसे खास बात यह कि पाठ में उस शहर का खाली नक्शा एक पूरे पेज पर दिया गया था जिसे पाठ में वर्णित जानकारियों के आधार पर भरना था। घर, बाज़ार, मन्दिर, मण्डी इत्यादि दिखाने थे। यह एक बहुत दिलचस्प गतिविधि थी। मुझे खुद इस पाठ पर काम करते वक्त काफी आनन्द आया। बच्चे उस समय के लोगों के नाम पढ़-सुनकर हँसे भी! शहर का खाका उन्होंने अपने ढंग से भरा! मुझसे मदद भी ली! नक्शे में एक-साथ बहुत सारी चीज़ें दिखाई जानी थीं, इस कारण काफी गड्ड-मड्ड भी हुआ।

मानव इतिहास के लम्बे कालखण्ड

में सैकड़ों शहर बने-बिगड़े और बदले। कुछ इतिहास के पन्नों से हमेशा के लिए गायब हो गए। मोहनजोदड़ो या हड़प्पा की तरह। कुछ बदली हुई शक्लों और बदले हुए नामों के साथ अपना अस्तित्व बनाए रहे, जैसे, काशी या उज्जैन! बहरहाल, शहरों का बनना-बिगड़ना और बदलना इतिहास की सामान्य परिघटना रही। इसे स्पष्ट करने के लिए मैंने पुराने शहरों को प्रदर्शित करने वाले एक नक्शे का उपयोग किया। कई शहरों के नाम बदल गए थे। बच्चों के लिए वह नक्शा एक रुचिकर अभ्यास था। उन्हें नक्शे में वे शहर ढूँढने थे जो आज भी हैं। कुछेक के नाम थोड़े-से बदल गए थे। बच्चों ने कई शहर ढूँढ निकाले। इसी तरह उन्होंने एक हज़ार वर्ष पुराने मध्य प्रदेश के नक्शे में भी आज के शहर ढूँढे थे। इनमें भी उन्हें कुछ के नाम बदले हुए मिले।

स्थानीय अनुभवों से सीखना

जैसा कि मैंने पहले ज़िक्र किया, सामाजिक अध्ययन नवाचार की पुस्तकों के कई पाठ मुझे इस बात की गुंजाइश देते थे कि मैं बच्चों को उनके आज के सवालों-समस्याओं से जोड़ूँ, उन पर बात करूँ। इस सिलसिले में मैंने पाया कि सिंचाई उनके लिए एक बड़ा मुद्दा है। 'गाँव ही गाँव, खेत ही खेत' पाठ उनके लिए थोड़ा-सा नया इसलिए था कि वह सिंचाई के उन पुराने तरीकों की जानकारी देता था जो अब काम में लगभग नहीं लाए जाते। मालवा, जो कभी पानी की प्रचुरता के लिए जाना जाता था, अब वैसा नहीं रह गया था। नदियाँ अब पहले की तरह सालभर नहीं बहती थीं। तालाब अब पहले जैसे भरोसे के नहीं रह गए थे। कुएँ बारिशभर के ही साथी थे। यही वक्त था, जब ट्यूबवेल से सिंचाई का चलन तेज़ी-से बढ़ा था। साथ ही, ट्यूबवेल की गहराई भी उसी तेज़ी-से बढ़ती गई थी। भू-जल स्तर लगातार नीचे जा रहा था। अब तो यह समस्या और भी ज़्यादा विकराल हो चुकी है।

बच्चों के खेतों में ज़्यादातर ट्यूबवेल से सिंचाई होती थी। जब तक सुदूर गाँवों तक बिजली नहीं पहुँची थी, सिंचाई के लिए डीज़ल पम्प का उपयोग होता था। बाद में, बिजली के पम्प का होने लगा। हालाँकि, बिजली की सप्लाई में लगातार व्यवधान आते रहने के कारण फसलों को पानी देने में अक्सर दिक्कत होती रहती थी। मालवी में सिंचाई करने को 'पाणत करना' कहते हैं। कई बच्चे इस काम में हाथ बँटाते थे। जब जाना कि पहले अलग-अलग ढंग से सिंचाई (पाणत) होती थी तब उन्होंने पाठ को थोड़ी और जिज्ञासा एवं कुतूहल के साथ पढ़ा।

इसी सिलसिले में मैंने आने वाले समय में पैदा होने वाले पानी के उस भयावह संकट की भी चर्चा की जब

सिंचाई तो क्या, पीने के लिए भी पानी पूरा नहीं मिलेगा। अगर हमने अभी से पानी बचाने के सार्थक उपाय नहीं किए तो! वैज्ञानिक खेती से सम्बन्धित पाठ इस मामले में विशेष सहायक रहा। बच्चे उस पाठ के ज़रिए जान चुके थे और अपने खेतों में देख भी रहे थे कि पारम्परिक खेती से इस नई खेती में पानी ज़्यादा लगता है। मेरे और बच्चों के लिए ये पाठ इसलिए बहुत उपयोगी रहे कि हम लोग सामूहिक रूप से निकट भविष्य में पैदा होने वाले एक बड़े मानवीय संकट पर बात कर पाए।

'समाज में जाति-पाति' जैसा पाठ पढ़ाने के पहले ही मैं थोड़ा-सा तनाव में था। होशंगाबाद कार्यशाला में भी पाठ को लेकर हुई चर्चा में मैंने अपनी आशंका व चिन्ता अपने शिक्षक साथियों और स्रोत शिक्षकों के बीच ज़ाहिर की थी। असल में, गाँवों में जाति काफी संवेदनशील मुद्दा रहा है। आज भी है। कक्षा में जातियों का ज़िक्र निकलने पर मुझे कक्षा के वातावरण के असहज होने का खतरा दिखाई देता था। सुब्बू का कहना था कि बच्चे समस्या को जब तक ठीक से जानेंगे-समझेंगे नहीं तब तक उसे खत्म करने के लिए कैसे तैयार हो पाएँगे! बात सैद्धान्तिक रूप से अपनी जगह ठीक थी लेकिन मेरी आशंका-चिन्ता अपनी जगह बनी हुई थी। बहरहाल, पाठ पढ़ाते हुए मैं एक खास तरह के तनाव में बना रहा। पाठ के जो प्रसंग मुझे ज़्यादा नाज़ुक और संवेदनशील लग रहे थे, उन पर अतिरिक्त रूप से सतर्क रहा। वैसे इस पाठ और इस तरह के अन्य पाठों से बार-बार गुज़रने के बाद मेरी अपनी भी यह समझ बनी कि इस तरह के पाठों का अगली कक्षाओं में सिलसिला बना रहे तो बच्चों के भीतर जाति-धर्म, ऊँच-नीच इत्यादि को लेकर बुनियादी वैज्ञानिक समझ विकसित करने में मदद मिल सकती है!

इतिहास जानने के साधन

एक बार फिर से इस मुद्दे पर लौटना चाहूँगा कि इतिहास को किस तरह जानें। इस सवाल के जवाब में इतिहास जानने के साधनों के सीधे-सीधे उल्लेख से ज़्यादा सही और प्रभावशाली होता है, उन साधनों के ज़रिए इतिहास जानने का तरीका सिखाना! इस नवाचारी सामाजिक अध्ययन के पाठों में यही सिखाने का प्रयत्न किया गया था। इससे रोचकता तो पैदा हुई ही, बच्चों के भीतर एक खास तरह के सीखने का आनन्द भी सृजित हुआ था।

आठवीं के इतिहास का बड़ा हिस्सा मुगल शासकों और अँग्रेज़ों से सम्बन्धित था। हालाँकि, मुगल काल के बारे में जानकारी सामाजिक अध्ययन की प्रचलित पुस्तकों की तरह बादशाहों के क्रमानुसार ही थी। लेकिन नवाचार के पाठों को बादशाह

नहीं बल्कि उनके समय में हुए परिवर्तनों और प्रमुख घटनाओं पर केन्द्रित किया गया था। भारत में मुगलों का आना और फिर अँग्रेज़ों का आना उत्तर-मध्यकाल की दो बड़ी घटनाएँ थीं। दो बड़े परिवर्तन! इतिहास के पाठों में मुगलकालीन भारत के बारे में बहुत सारी बातें उस समय के बने चित्रों द्वारा बताई-समझायी गई थीं। कई तरह के चित्र थे जैसे अजमेर में अकबर, हिन्दू रानी की जचकी, मुगल सेना का रणथम्भोर के किले पर आक्रमण, अमीरों का रहन-सहन, अकबर का दरबार, मुगलकाल के गाँव, शिकार करना, औरंगज़ेब इत्यादि! इन चित्रों को उसी दौर में जगन्नाथ, गोवर्धन इत्यादि जैसे चित्रकारों ने बनाया था। ये चित्र उस समय के पहनावे, रहन-सहन, घर, सामाजिक आचार-व्यवहार वगैरह की जानकारी देते थे। कहना चाहिए कि इतिहास के ये पाठ इसी

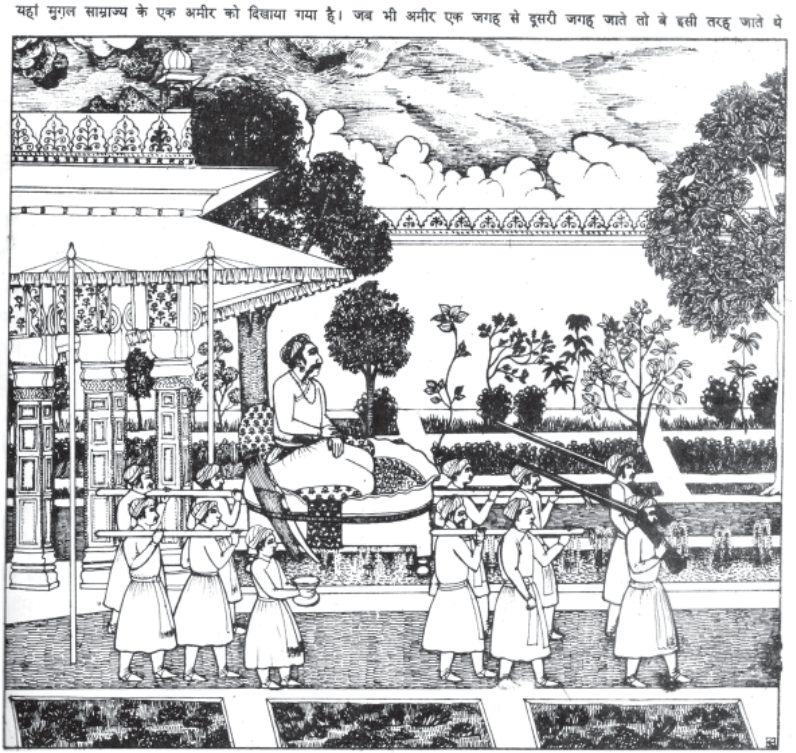

चित्र-2: *कक्षा आठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'मुगल साम्राज्य के अमीर' का एक पेज।*

पद्धति पर तैयार किए गए थे। बच्चों ने इन चित्रों की मदद से काफी कुछ पता किया। इस काम के दौरान कक्षा में काफी हो-हल्ला रहा। हँसी-मज़ाक, हलचल, जिज्ञासा, आश्चर्य! एक-दूसरे की टाँग-खिंचाई! सीखने व काम करने का एक उत्तेजना भरा ऐसा वातावरण जो सीखने को आनन्दमय बना दे!

वैसे गाँवों के बारे में बच्चे छठी कक्षा से पढ़ रहे थे। छठी कक्षा में उन्होंने गाँव बसने और बिलकुल शुरुआत के गाँवों के बारे में पढ़ा था। सातवीं में आकर उन्होंने लगभग हज़ार साल पहले के गाँवों के बारे में जाना-समझा, आठवीं में मुगलकालीन और अँग्रेज़ों के आने के बाद के गाँवों के बारे में जो तुलनात्मक रूप से थोड़े-से विकसित गाँव थे। नगरों में भी बड़ा परिवर्तन आ चुका था।

आठवीं के इतिहास में नक्शों का अगला विस्तार था। वे बादशाहों के साम्राज्य का फैलाव तो बता ही रहे थे, इसके अलावा उत्तर-मध्यकाल में हिन्द महासागर के ज़रिए होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की भी जानकारी दे रहे थे। ऐसे नक्शों के ज़रिए बच्चों ने पूर्व और दक्षिण एशिया के अफ्रीका और यूरोप महाद्वीप से होने वाले आयात-निर्यात के सामान की सूची बनाई थी। जल-मार्ग में पड़ने वाले बन्दरगाहों के नाम और पुर्तगालियों के किलों को तालिका में दर्ज किया था। पता किया था कि सन् 1857 में अँग्रेज़ों का शासन भारत के आज के किन-किन प्रान्तों में फैला हुआ था। इसके लिए उन्होंने सामाजिक अध्ययन में दिए नक्शे के साथ एटलस में दिए भारत के राजनैतिक नक्शे का उपयोग किया था। एक तरह से नक्शों के माध्यम से इतिहास पढ़ने-समझने की जो शुरुआत छठी कक्षा से हुई थी, वह आठवीं तक आकर काफी विकसित हुई। मुझे लगता है कि अगर अगली कक्षाओं में भी बच्चों को इतिहास के पाठ इस तरह से पढ़ने-पढ़ाने को मिलें तो उनकी समझ और बेहतर हो सकती है।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश, संस्मरण – एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, और फिल्म पर एक पुस्तक – हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: *एकलव्य* द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

ईश्वर की कहानियाँ

विष्णु नागर

ईश्वर एक दिन सड़क पर जा रहे थे कि एक बच्चा उनके पास आया। "अंकलजी, क्या आप ईश्वर हैं?"

ईश्वर हतप्रभ थे। वे बोले, "हाँ बेटा, मैं ईश्वर हूँ। बोलो। वैसे तुमने मुझे पहचाना कैसे? मैं तो सालभर से यहीं हूँ। आज तक तो मुझे किसी ने पहचाना नहीं!"

बच्चे ने कहा, "मैंने तो वैसे ही पूछ लिया था। लेकिन इतना जानता हूँ कि ईश्वर ने मेरे साथ बेइन्साफी की है। उसने मेरे माँ-बाप, दोनों छीने हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि ईश्वर ने ऐसा क्यों किया।"

"इसका कोई तर्क तो नहीं है, बेटा। चलो, मैं तुम्हें एक सुन्दर-सी बॉल देता हूँ।"

"बॉल-वॉल मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे बताओ कि मेरे साथ ऐसा क्यों किया?"

"अच्छा, सोने की दो मोहरें ले लो। इससे तुम्हारी ज़िन्दगी आसान हो जाएगी।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे अपने माँ-बाप ही चाहिए।"

"बेटा, मरे हुए लोग वापिस नहीं आया करते। यही दुनिया का दस्तूर है।"

"अगर वे वापस नहीं आ सकते तो तुमने उन्हें छीना ही क्यों? बताओ?"

बच्चा क्रोध में था और अपने नन्हे-नन्हे हाथों से ईश्वर को मार रहा था, काट रहा था। उनके कपड़े खींच रहा था। उन पर लातें चला रहा था।

दूर से कुछ लोग यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने जब मामले को ज़्यादा बिगड़ते देखा, तो वे पास आए। उन्होंने बच्चे को छुड़ाने की कोशिश की, तो वह और ज़ोर-से चीखा, "यह ईश्वर है। इसने मेरे माँ-बाप छीन लिए हैं। कहता है, 'वापिस नहीं दूँगा'। इसे मैं पीटूँगा और मारूँगा। छोड़ दो मुझे।"

अन्त में ईश्वर को अपनी जान छुड़ाने के लिए कहना पड़ा, "यह बच्चा मुझे ईश्वर समझ बैठा है। इसे आप समझाइए।"

"जाइए-जाइए, भाई साहब। आराम-से जाइए। माँ-बाप के मरने के बाद इस बच्चे ने पहली बार ऐसी हरकत की है। हम इसे समझा लेंगे।"

इस घटना के बाद से ईश्वर बच्चों से डर गए। वे सबको दिखाई देते लेकिन बच्चों को नहीं।

विष्णु नागर: बचपन और छात्र जीवन शाजापुर, मध्य प्रदेश में बीता। सन् 1971 से दिल्ली में स्वतंत्र पत्रकारिता। *नवभारत टाइम्स* तथा *दैनिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, नई दुनिया* और *शुक्रवार समाचार* साप्ताहिक से जुड़े रहे। भारतीय प्रेस परिषद के पूर्व सदस्य एवं महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की कार्यकारिणी के पूर्व सदस्य। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

सभी चित्र: कैरन हैडॉक: शोधकर्ता, शिक्षिका, वैज्ञानिक, अध्यापिका और चित्रकार। उन्होंने अमेरिका में बायोफिज़िक्स में अपनी पीएच.डी. और पोस्टडॉक्टरल अध्ययन पूरा करने के बाद भारत में काम शुरू किया। अपने सभी प्रयासों में, उनका प्रमुख सरोकार समाज के वंचित वर्गों के प्रति रहा है, और वे सामाजिक परिवर्तन के लिए कला और विज्ञान शिक्षा—दोनों का उपयोग करती रही हैं।

यह कहानी हरियाणा राज्य संसाधन केन्द्र द्वारा तैयार की गई विष्णु नागर की किताब *ईश्वर की कहानियाँ* से साभार।

आलू की आँख

राजेश जोशी

बादल छाए थे, खूब सारे कबूतरों की तरह। गुनगुनी धूप उनके पंखों की छाँव से सँवला गई थी। एक मौजभरा मौसम था - चिड़ियों के लिए, और मट्टू के — 'मौसम शास्त्र' में 'मौसम बदमाश' हो रहा था। उसने रात कहीं से चालीस रुपयों की जुगाड़ जमा ली थी, कि किसी तरह मैं काम चला लूँ फिर पगार मिल जाएगी, और चक्का चल निकलेगा। इसकी टोपी उसके सर कर देना उसके बाएँ हाथ का खेल था। मुझे उधार माँगते बड़ी झेंप लगती थी। इसलिए मैं तैयार नहीं था, पर सब दोस्तों ने कहा - सरकारी नौकरी मिल रही है, छोड़ो मत, सरकारी अच्छी है, प्राइवेट में रोज़-रोज़ की चकल्लस है। दो सौ पे सही लेंगे सौ पकड़ा देंगे, ऊपर से इल्ले-पिल्लों का रोब सहो, हथेली पे थूक झेलना पड़ता है। सबने कहा, "सरकारी में ठाठ है, ठाठ खुला पड़ा है, ठाठ में घुस जाओ।" एक-सौ-तीस-ढाई-साढ़े बत्तीस, का ठाठ था। मैं एकाएक ठाठदार हो गया। आत्मा ने मेरे सीने को ठकठकाया तो सीना उभर आया, गर्दन अकड़ गई और थेगलेदार जूते ठकठकाने लगे। ठकठक सुनकर सब हँसे, हँसकर बोले, "कह-सुनकर तबादला करा लेंगे, फिलहाल - लपक लो।" सब मुझसे ज़्यादा अनुभवी थे, जानते थे, किससे और कितना कहना-सुनना पड़ता है। लपकने से पहले, रात मैंने सर्राफा जाकर, फीचर* खेला। किस्मत बुलन्द थी। मट्टू से बहाना करके मैं चुपचाप बलन** ले आया, उसे पता लग जाता तो ज़रूर दस-बीस झटक लेता। पूरे पिचत्तर दाबकर मैं चल पड़ा।

* * *

खड़खड़ाती-भड़भड़ाती हुई वह एक शानदार बस थी। सर्कस की कार-सी, भुर्र... भुर्र... करती, हिलती-डुलती, जो मंच पर आती और चलते-चलते जिसके सारे पुर्ज़े बिखर जाते। बच्चे हँसते और तालियाँ बजाते। यही होगा इस बस का भी हाल। मैंने सोचा, सारे यात्री जोकरों की तरह उछल-उछलकर खाई-खन्दकों में बिखर जाएँगे, धूल झटकारकर खड़े होंगे। मुँह फाड़कर कहेंगे, 'जंगल सर्कस आपका स्वागत करता है'। पर वहाँ ताली कौन बजाएगा, पेड़ या बन्दर? बस और स्टेंड के बीच धूल का एक विशाल बगूला खड़ा था, मैं उसके

* *सट्टा*

** *सट्टे की रकम*

भीतर से गुज़रा और बस में चढ़ लिया। सीटें लम्बाई में लगी थीं, बस की चौड़ाई में नहीं। सारी सीटें भर चुकी थीं, ठसाठस। छत इतनी नीची थी कि मेरी लम्बाई उसमें नहीं अट पाई। आँखों में पिता के लम्बे होने का दुख तैर आया, दुख गरदन की पिछली हड्डी से बाहर आया था, जो गरदन झुके होने से हँसुए-सी उभर आई थी। बस चली, और चार कदम चलकर रुक गई। ऐसा कई बार हुआ, कोई हाथ दिखाता और वह रुक जाती। लोग चढ़ते और सामान ऊपर चढ़ाया जाता। एक गाँव से हाट बाज़ार को जाने वाले लोग चढ़े, साथ बहुत-सी डलियाँ और बोरे भी चढ़े। ऊपर सामान चढ़ाया जाता तो लगता, सामान जैसे मेरी खोपड़ी में भरा जा रहा हो। क्या मेरा सर कोई भण्डार था? वैसे फालतू की ढेर सारी बातों

से तो बेहतर ही था यह सामान – सब्ज़ी थी, अनाज था, और गिलट के जेवर भी! सड़क, बस से ज़्यादा शानदार थी। धूल और धचकों से भरी हुई। बावजूद बस के शोर के, लोग-बाग बतिया रहे थे। बस की भड़... भड़...खड़...खड़ बात के किसी भी हिस्से में एक टेक की तरह जुड़ जाती।

बस की खड़...खड़ के बीच एक आवाज़ उभरी - कुड़कुड़ कुड़कुड़, यह आवाज़ बस की नहीं थी, मुर्गों की थी, जो मेरी बगल में खड़े आदमी के हाथ में उल्टे लटके थे, टाँगें बँधी थीं। भीड़ इतनी थी कि न तो हिलने-डुलने की जगह थी, न पंख फैलाने की। कंडक्टर तिसपर भी भीड़ में दबता निकलता, टिकट काटता, आगे से पीछे आ रहा था। मुझे लगा कंडक्टरी की नौकरी के लिए अवश्य ही भीड़ में दबते हुए निकलने का अनुभव माँगा जाता होगा। वह काफी अनुभवी लग रहा था। वह जब मेरे पास आया तो मैंने थोड़ी ऊँची आवाज़ में कहा - एक देपालपुर। अनेक चेहरे अचानक मेरी ओर घूम गए। कंडक्टर का मुँह बिगड़ गया। जैसे मैंने कोई गंदी हवा छोड़ी हो। उसने तकरीबन छीनते हुए मेरा नोट लिया, टिकट काटा, बाकी पैसे पीछे लिखे, और मेरी हथेली में खोंस दिया। मैं समझ नहीं पाया, वह दूसरों के टिकट काटने लगा। 'एक ग्यारह कोस' 'एक बड़ा गाम'... एक आवाज़ उभरी 'एक खोलड़ा गाँव दीजो', आवाज़ पर एकसाथ कई लोग हँसे, ठठाकर। क्या-क्या नाम हैं गाँवों के भी! मैंने सोचा। बहुत-से यात्री लगातार आपस में बतिया रहे थे, मैंने सोचा, ज़रूर ही नियमित वाले यात्री होंगे।

देपालपुर एक कस्बेनुमा छोटी-सी जगह थी। शहर के करीब होने के कारण छोटे व्यापारी काफी तादाद में थे। एक औसत दर्जे की मण्डी था यह गाँव। यहाँ की मिट्टी काली थी और ज़मीन में पानी खूब था। आलू के लिए बढ़िया ज़मीन थी। मौसम की नज़र भैंगी न हो तो काफी बड़ा आलू होता, जो इन्दौर-उज्जैन के रास्ते दूर-दूर जाता था। आलू के अलावा यहाँ के डोरिये भी प्रसिद्ध थे, और डोरियों का धन्धा भी खूब था। मोटे खुरदुरे सूत की दरियों को डोरिया कहा जाता था। ये दरियाँ यहाँ की विशेषता थीं। आसपास के किसान पतले डोरिये ओढ़ने के काम में भी लेते थे। अनेक घरों में डोरिये बनाने के छोटे-छोटे कारखाने थे। लेकिन फिर भी लोग मानते थे कि गाँव का नाम मनहूस है, कोई गाँव का नाम नहीं लेता। किसी दूकान के बोर्ड पर देपालपुर का नाम नहीं लिखा था। व्यापारियों का खयाल था कि सुबह-सुबह नाम ले लो तो बोनी-बट्टा तक न हो। मक्खी मारो दिनभर। मुझे जब ये सारी जानकारियाँ प्राप्त हुईं तो कंडक्टर की सूरत कई बार याद आई।

बस स्टेंड बरगद का एक पेड़ था,

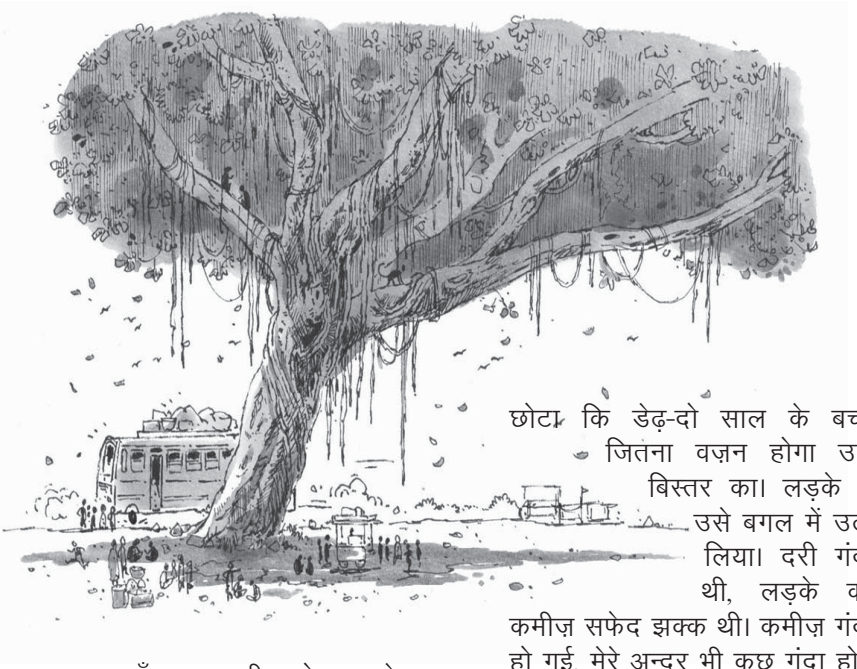

जहाँ बस रुकी। लोग उतरे, साथ-साथ मैं भी उतरा। कोई पहचान नहीं थी, पहली बार यहाँ आया था। एक दूकानदार से मैंने पूछा, "स्कूल कहाँ है?" "किससे मिलना है आपको?" उसने जवाब की बजाय सवाल कर डाला। "मेरी नई नियुक्ति हुई है," मैंने कहा। "तो आप ही हैं नए मास्साब!" उसने ऐसे कहा जैसे यह कोई अचम्भे की बात हो। मैं क्यों नहीं हो सकता नया मास्टर? क्या नए मास्टर के सर पर सींग होते हैं? उसने मुझे देखा और दूर खड़े एक लड़के से बोला, "नए मास्साब हैं, स्कूल ले जा।" लड़के ने लपककर नमस्ते किया और मेरा सामान लोक (उठा) लिया। बैग मेरे कन्धे पर था। सामान के नाम पर एक पतला-सा गद्दा था, जो फटी हुई दरी में कसकर बँधा था। इतना छोटा कि डेढ़-दो साल के बच्चे जितना वज़न होगा उस बिस्तर का। लड़के ने उसे बगल में उठा लिया। दरी गंदी थी, लड़के की कमीज़ सफेद झक्क थी। कमीज़ गंदी हो गई, मेरे अन्दर भी कुछ गंदा होने लगा। उबरने को मैंने पूछा, "कौन-सी में पढ़ते हो?" "नवीं में," उसने बताया।

सफर हो या ज़िन्दगी, सामान कम होना चाहिए, मैं ऐसा मानता था। यह मानना मेरी तंगहाली की उपज भी हो सकता था। जैसा बीज वैसी फसल। मेरी मध्यवर्गीयता ने अन्दर कहीं कौंचा, मुझे अपने ही गद्दे को देखकर झेंप लगी, वह इतना छोटा लग रहा था कि मुझे लगा लोग हँसेंगे। "इसे कहीं रख नहीं सकते?" मैंने पूछा। लड़के ने कहा, "दूकान में रख देता हूँ।" वह दूकान की तरफ बढ़ गया। मुझे राहत मिली।

वह लड़का रमेश था। उसके पिता की परचूनी की दूकान थी। उसकी कमीज़ में धूल का दाग लग गया था।

पर वह निश्चिन्त था। वह बायलॉजी का छात्र था। 'मेरा ही छात्र है' मेरे मन ने कहा। जैसे छात्र न हो, मेरी जागीर हो, तो सावधान! अब मैं आ गया हूँ, तुम्हारे दिमागों में इस देश की शिक्षा प्रणाली के सड़े आलू की खेती करने! मेरी सोच को लेकिन अचानक रुकना पड़ा, सामने एक लड़का खड़ा था, नमस्ते की मुद्रा में। "मैं केशव," उसने कहा। रईस घर का लड़का है, गले में लटकी सोने की चेन और कपड़ों की लकदक ने कहा। वह काफी तपाक-झपाक लड़का था। मिलते ही बोला, "रहने की फिक्र न करें, मेरा घर है, स्कूल से थोड़ा दूर है, आप चाहेंगे तो पास भी मिल जाएगा। चाहें तो अभी देख लें।" मैंने कहा, "पहले स्कूल हो लें फिर बाद को चलेंगे।" रमेश आगे निकल गया था। केशव ने एक ही झटके में बहुत सारी जानकारियाँ दे डालीं। सारे मास्टरों के नाम, उनके विषय, और फिर अपने परिवार और धन्धे के बारे में, और यह भी कि जब ट्रक इन्दौर-उज्जैन जाता है तो 'अँग्रेज़ी' भी आ जाती है। स्कूल के पास पहुँचते-पहुँचते वह बोला, "इंग्लिश का एक क्वाटर पड़ा है। आप थक गए हों तो भिजवा दूँ?" रईसी का यही मज़ा है, पैसे से आत्मविश्वास उज्जड हो जाता है, लिहाज़ नहीं, लिहाज़ का सवाल नहीं। कोई क्या उखाड़ लेगा वाला-सा अन्दाज़। वह तोल रहा था,

मैं तराजू में चढ़ने से इनकार कर रहा था। उसे कोई जल्दी नहीं थी, उसने दो-एक बाँट और चढ़ाए और चल दिया।

स्कूल-भवन नया-नया था। गाँव में शिक्षा के प्रसार के हमारे पावन उद्देश्यों का ताज़ा प्रमाण! भवन को भिगोकर एक बरसात गुज़र चुकी थी। बाहरी दीवारों पर पानी की चोटें निखरी हुई थीं। जो काई दीवारों पर उग आई थी, वह अब कलियाने लगी थी। चारों ओर काफी बड़ा अहाता था। पीछे के अहाते में घास उग रही थी। घास ऊँची हो रही थी, घास हिलती तो हवा सरसराने लगती। शिक्षा हिलती-डुलती नहीं थी, वह बरसों से एक ही जगह जमी हुई थी और मज़े से बबुए जन रही थी। स्कूल खुले ढाई से ज़्यादा महीने बीत चुके थे! बायलॉजी का कोई मास्टर यहाँ नहीं था। मेरे आ जाने से लड़के खुश हुए, जैसे बायलॉजी पढ़ते ही वे इस देश की नस-नाड़ी समझ जाएँगे! मैं पहुँचा, मेरे पहुँचने से पहले मेरे आने की खबर स्कूल में पहुँच चुकी थी।

स्कूल छोटा था और मुझे देखने की उत्सुकता से भरा हुआ था। "लो देखो, जी भरकर देखो!" मैं दाखिल हो गया। लड़के अलग-अलग झुण्डों में खड़े थे। मुझे देखते ही उनकी आँखों में एक आश्चर्य हिलोरने लगा और कानाफूसी शुरू हो गई। कुछ लड़के मुझसे भी बड़े लग रहे थे। वे डीलडौल से इतने बड़े थे कि उनकी उमर भी बड़ी लग रही थी। फिर कुछ लड़कियाँ भी दिखीं। अहा, तो लड़कियाँ भी हैं! मेरे अन्दर मेरा कुआँरापन कुरकुराया। प्रवेश द्वार की बाईं बाज़ूवाले कमरे पर 'प्राचार्य' की तख्ती टंगी थी और दरवाज़े पर चिक लटक रही थी। तो यह है प्राचार्य का ऑफिस, चिक से झाँकता कि कौन आ-जा रहा है। तख्ती देखते ही मट्टू की याद आई, वह होता तो पूछता 'तोते तो कभी तख्ती नहीं टाँगते कि तोते हैं, फिर इन ससुरे, प्राचार्यों को यह ज़रूरत क्यों पड़ती है?' हँसी आने को हुई पर बहुत-सी आँखें मुआयना कर रही थीं, मैं हँसी को दबा गया। प्राचार्य ज़रूर थुलथुल-सा मोटा आदमी होगा, हमारे यहाँ थोड़ी जमी हुई नौकरी हो और आदमी औसत दर्जे का गृहस्थ हो, तो फैलने-फूलने में वक्त नहीं लगता। पेंट को बार-बार पेट पर खींचने और पैर फैलाकर चलने की आदत हो जाती है। मैं यही सोचता हुआ, चिक उठाकर अन्दर घुसा। मेरी धारणा गलत निकली, आलू की ऐसी उर्वर भूमि के बावजूद प्राचार्य मोटे नहीं थे। वे कुर्ते-धोती वाले बूढ़े-से व्यक्ति थे, चेहरा भरा-भरा था, और भौहों के बीच गोल लाल तिलक चमक रहा था। तो तिलकधारी है! मेरे मन ने कहा।

"नमस्कार!"

"नमस्कार, नमस्कार!" (वे थोड़ा-सा उठे और फिर कुर्सी में धँस गए)।

"आइए बैठिए, आप तो बहुत कम उम्र के लगते हैं, लगता है पहली ही नौकरी है?"

"जी हाँ।" (मैंने थोड़े-से दाँत चिरा दिए)।

"अच्छा है, खूब अच्छा है। हम तो नौकरी में बुढ़ा गए। आप अच्छे आ गए, यहाँ तीन माह से देखिए न बायलॉजी टीचर नहीं है। क्या बताएँ, चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ लिखीं, खुद डी.एस.ई. से तीन बार मैं इन्दौर जाकर कहकर आया, पर कौन सुनता है साब? अभी शहर का मामला होता तो पचास टीचर भेज दिए जाते। गाँव है सो किसी को फिकर नहीं, बच्चों की पढ़ाई का कितना हर्ज़ा हो रहा है, पर कौन देखने वाला है?... अब अगले ही महीने दिवाली-दशहरे की छुट्टियाँ हो जाएँगी... कब कोर्स पूरा होगा... आप ही कहिए?"

"जी हाँ, वक्त तो बहुत कम है।" (मुझे खुशी हुई कि अगले महीने ही छुट्टी हो रही है।)

"पर ठीक है, दिक्कत तो होगी आपको, आप शहर से आए हैं। यह तो छोटा-सा गाँव है, लड़के भी ज़्यादातर गाँव के ही हैं, कुछ लड़के मगर हुशियार हैं... अयं... अरे कोई चपरासी है? (उन्होंने वहीं से एक आवाज़ बाहर फेंकी, फिर मुझसे बोले) बाकी के तो अब क्या कहें, किसानों के लड़के हैं, पर सनक है, पढ़ेंगे। माँ-बाप को भी सनक है, पढ़ाएँगे। पढ़ो, पढ़ने से कौन रोकता है, पर हैं सब-के-सब एकदम ढाँदे। पूछिए, पढ़-लिखकर क्या करोगे। फिर शहर भागेंगे। इस देश का कबाड़ा इसी से हुआ है, जिसे देखो शहर भाग रहा है। हम कहते हैं, खेती करो, आलू में। आप ही देखिए, कितनी बचत है। यहाँ तो ज़रा साझ-सँभाल कर लो तो खूब बड़ा आलू होता है... विदेशों तक यहाँ का आलू..." चपरासी बीच में कोई कागज़ ले आया तो बातचीत रुक गई। वे नहीं चाहते थे कि किसानों के लड़के पढ़ें, हमारे यहाँ अक्सर उच्च वर्ग के लोग यही सब दलीलें देते हैं। तकलीफ उन्हें किसानों के लड़कों के शहर भागने से नहीं होती, तकलीफ उनके पढ़ जाने से है, पढ़-लिख जाएँगे तो दबेंगे नहीं। पढ़े-लिखे शातिरों का सारा वर्चस्व समाप्त हो जाएगा, तकलीफ सबसे ज़्यादा इसी बात की थी। मैं काफी ऊब चुका था। मुझे मकान भी देखना था और भूख भी लग रही थी। चपरासी जाने लगा तो प्राचार्य ने कहा, "किशोरी के यहाँ से दो चाय भेज दो।" वे भूल गए थे कि क्या कह रहे थे। चपरासी के निकलते ही वे फिर मुझसे मुखातिब हो गए।

"आप तो ब्राह्मण हैं... नागर या सरयूपारी?"

"जी नागर।" (मन हुआ, कहूँ चाण्डाल हूँ और तुम्हारा अन्तिम संस्कार करने आया हूँ।)

"अच्छा है।" (मन हुआ, पूछूँ क्या अच्छा है, ब्राह्मण होना या नागर होना। पर बोलने में वे इतने बड़े पॉज़ नहीं देते थे) "अब तो शिक्षा तक में शूद्रों की नियुक्तियाँ होने लगी हैं, हमें तो कोई एतराज़ नहीं, कोई आए, सबको नौकरी चाहिए, पर संस्कार भी तो एक चीज़ होती ही है... शिक्षा का भी एक संस्कार होता है... है कि नहीं?"

"जी..."

"स्कूल है, फैक्ट्री या ऑफिस तो है नहीं, पवित्र काम है, हमने तो पूरी ज़िन्दगी खपा दी। आप हैं, आपके पास संस्कार हैं (मुझे मेरे संस्कृत वाले शास्त्रीजी याद आ गए। वे अक्सर मेरे बारे में कहते थे, यह पण्डित के घर गँवार पैदा हुआ है।), बच्चों को सिखाएँगे तो उनको भी एक संस्कार मिलेगा। हमारे पिताजी कहा करते थे...लीजिए चाय लीजिए।" चाय आते-आते थोड़ी ठण्डी हो गई

थी। वे सुड़क-सुड़क के पीने लगे। चाय खत्म करके मैं भी बाहर आ गया।

बाहर निकला तो यादव मुझे पकड़कर स्टाफ रूम में ले गया। अध्यापकों और व्याख्याताओं से परिचय हुआ। औपचारिक-सा। सबने कहा कि आपके आने से बड़ी खुशी हुई। पर किसी के चेहरे से खुशी की एक किरण भी नहीं फूटी। वे शिक्षा देते-देते प्रौढ़ा चुके थे या बुढ़ा चुके थे। उनमें से किसी ने पूछा, "डी. एस.ई. तो अभी पुराने वाले ही हैं न?" मैंने कहा, "मुझे मालूम नहीं," उन्हें विश्वास नहीं हुआ। सबके चेहरे पर शक की एक झाँई पड़ गई। पता होगा तो भी नहीं बताऊँगा, मैंने सोचा और बाहर आ गया।

बाज़ार के पास ही, एक दरवाज़े और दो खिड़कियों वाला एक कमरा मैंने ले लिया। कमरा बरसाती जैसा था। दरवाज़े के सामने आँगन था, जिसमें पेड़ लगे थे। मकान मालकिन एक बूढ़ी महिला थी। उसने चटपट झाड़ू लगा दी। और रमेश जाकर सामान ले आया। वह दुबला-पतला, सीधा-सा लड़का था। थोड़ा झेंपू था, और बोलता बहुत था। शक्कर-चाय चाहिए थी, वह जाकर ले आया। पैसे दिए तो उसने मना कर दिय। मैंने ज़्यादा ज़ोर दिया तो बोला कि दूकान से पूछकर बताऊँगा। मैं समझ गया, वह नहीं लेगा। गाँववालों की इस भलमनसाहत का मास्टर भरपूर फायदा उठाते। यादव त्रिपाठीजी की मज़ेदार नकल करता। त्रिपाठी घूमते-फिरते किसी गुड़बेली पर पहुँचेंगे, कहेंगे- 'वाह पटेल, बड़ा बढ़िया गुड़ बनाए हो, हमारे बच्चों ने तो अभी तक गन्ना भी नहीं चखा।' और दूसरे ही दिन पटेल गट्ठरभर गन्ने उनके घर पहुँचा देता। सुबह-सुबह वे किसी भी खेत की ओर निकल जाते और झोलाभर सब्ज़ी तुड़वा लाते। चलते समय दोस्तों ने भी कहा था, गाँव में मास्टर बड़ी चीज़ होता है, खाने-पीने की चीज़ों की जुगाड़ तो फोकट में ही हो जाएगी।

शाम हो गई थी। बिजली जलाई तो बगल के कमरे वाला किराएदार आ गया। उसका नाम मदन सोनी था। वह पोस्ट ऑफिस में बाबू था और केवेंडर सिगरेट पीता था। उसने एक सिगरेट पिलाई और बाहर से दो चाय बुलवा लीं। वह पहला हमउम्र व्यक्ति था, जो मुझे मिला। शाम की मनहूसियत थोड़ी छट गई। वह भी बाहर से आया था और आए इतना अर्सा हो चुका था कि वह भी आलू के आतंक से भर गया था। इधर-उधर की दो-चार बातों के बाद ही, वह भी आलू के बारे में शुरू हो गया। "आलू का क्या है, दो महीने में फसल तैयार हो जाती है। कुएँ वाली ज़मीन हो तो बस पौबारा है, स्टोरेज ही साला एक सरदर्द है। ज़रा गर्मी पड़ी कि सड़ा, ज़रा तेज़ धूप पड़ जाए तो यहाँ के लोगों के चेहरे गधों की तरह लम्बा

जाते हैं। कितने ही मास्टरों की आलू की खेती है।" "अच्छा!" मैंने उसे थोड़ा-सा कुरेदा। "और क्या?" वह बताने लगा। "हिन्दी वाले त्रिपाठी ने पिछले बरस ही खूब बढ़िया ज़मीन खरीदी है। पटेलों के लड़कों से रुपया ऐंठो और आलू उगाओ। गुरु, मास्टरी का धन्धा है चोखा।" वह हँसने लगा। उसका हँसना कनस्तर-सा बजा। वह चुप हुआ तो मैंने कहा, "बड़ा सन्नाटा है यहाँ।" "अरे, काहे का सन्नाटा, अभी सटोरिये आते होंगे, आधी रात तक धमचक रहती है। बाहर ओटले पर।" वह फिर हँसने लगा।

सोनी से मिलकर मज़ा आया। लेकिन 'मास्टरी का धन्धा' शब्द मुझे काफी देर तक चुभता रहा। मैं बाहर निकला, सिगरेटें खरीदीं, और ढाबा तलाशता हुआ काफी दूर तक निकल गया। रात घिरने लगी थी, मट्टू साला रम्मूछ बिठा (खेल में अनुमान लगाना) रहा होगा, मैंने सोचा। एक रम्मूछ मैंने भी बनाई, 'देपालपुर की दुआ, आलू का अट्ठा। दुए से आठ, अब किसके साथ हस्?' सड़क पर पेड़ इतने थे कि अकेले हँसने में अप (अटपटा) लग रहा था।

(...जारी)

राजेश जोशी: हिन्दी के लेखक, कवि और नाटककार हैं। अपने कविता संग्रह *दो पंक्तियों के बीच* के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। इसके अलावा मुक्तिबोध पुरस्कार, माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान से नवाज़े जा चुके हैं। इनकी कविताएँ अँग्रेज़ी, रशियन, जर्मन, उर्दू और कई भारतीय भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: शुभम लखेरा: स्वतंत्र चित्रकार हैं। गवर्नमेंट फाइन आर्ट कॉलेज, ग्वालियर से पेंटिंग में स्नातक। रियाज़ अकादमी, भोपाल से इलस्ट्रेशन का कोर्स। पिछल 8 सालों से बाल पत्रिकाओं के लिए चित्रकारी कर रहे हैं। डकबिल, तूलिका, चाइल्ड फंड इंडिया, एनसीईआरटी, नवनीत, एकलव्य, एलएलएफ, रूम टू रीड जैसे कई प्रकाशनों के साथ काम किया है। फिलहाल, अपने शहर चंदेरी, म.प्र. में रह रहे हैं।

वर्ष 27 अंक 157-162

शैक्षणिक संदर्भ

अंक: 157

यौन-आकर्षण और गन्ध	05	तोतिया तीतर	53
हज़ारों साल की...: भाग-1	13	बच्चे, नागरिकता और...: भाग-1	59
बिट्टू के. राजारमन के साथ...	19	समय, दूरी और...: भाग-3	68
शिक्षा की अलख जगाती...	31	दाईं सूँड के गणेशजी: भाग-1	76
कहानियाँ - बच्चों के अन्तर्मन...	37	पानी को उबालने पर...	86
रियाज़ का रहस्य	47		

अंक: 158

लीमर में मिले प्यार के रसायन	05	पढ़ाई में कैसे मददगार हैं चित्र?	48
कहानी अमूर्त चिन्हों की	10	बच्चे नागरिकता और...: भाग-2	54
संरक्षण नियमों का रहस्य...	17	बच्चे और एटलस: भाग-4	63
एक पाण्टा नाम	27	दाईं सूँड के गणेशजी: भाग-2	74
आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक...	39	जब कुत्ता पेशाब करता है...	86

अंक: 159

बेल के पौधे और...: भाग-1	05	सुबह की संगीत सभा	45
मादाएँ अपने नर पार्टनर में...	11	बच्चे और एटलस - 2: भाग-5	54
ईशांगो बोन	22	ग्रीन थाई करी	67
मैं विज्ञान कथाएँ क्यों लिखता...	29	व्हाइट नॉइज़	79
बच्चों का बैंक	37	वर्षा होने के तुरन्त बाद मेंढक...	83

अंक: 160

उभयलिंगी जीव - नर भी...	05	आनन्द निकेतन बैंक	53
बेल के पौधे और...: भाग-2	12	इतिहासों के अँधेरे...: भाग-6	60
अँगुलियों की करामात	17	अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज	69
बिजली - अच्छी, बुरी और...	22	पुराने पेड़ की बातें	79
चूहे, दीमक और आधारशिला...	39	दोपहिया वाहन मुड़ते वक्त...	86

अंक: 161

सर्च फॉर लॉस्ट बड्र्स	04	झगड़ी	61
चालकेवाड़ी पवन ऊर्जा...	07	बच्चों ने तैयार किया...: भाग-7	63
तुम सम्भालो मेरे बच्चों को	15	मंतोड़ा	71
विश्व विजेता दस	25	मौत के कुएँ में चलते वक्त...	79
साप्ताहिक बाज़ार: दुनियादारी...	31	गोह का विशाल बिल	89
स्कूल के ढाँचे में लोकतंत्र...	38		

अंक: 162

कोयल के अण्डे, कौओं के...	05	ईश्वर की कहानियाँ: भाग-1	64
हिन्दसे	16	आलू की आँख: भाग-1	66
सांख्यिकी की एक महत्वपर्ण...	21	इंडेक्स: अंक 157-162	76
मिट्टी से मिट्टी तक...	34	नमकीन भोजन खाने के बाद...	83
नाटक इंडिया कम्पनी...	41	मिट्टी खाकर बिल बनाने...	86
पुराने समय के दो शहर: भाग-8	57		

इंडेक्स देखने का तरीका: छह अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थानों पर रखे गए हैं। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का क्रमांक है जिसमें वह लेख प्रकाशित हुआ है। फुलस्टॉप के बाद उस लेख का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है। उदाहरण के लिए, लेख 'संरक्षण नियमों का रहस्य...' **158**.17 का अर्थ है, यह लेख अंक 158 के पृष्ठ क्रमांक 17 से शुरू होता है।

भौतिकी (Physics)

संरक्षण नियमों का रहस्य	अजय शर्मा व विवेक मेहता	**158**.17
बिजली - अच्छी, बुरी और...	श्रीकुमार नहालुर और वर्धन	**160**.22
दोपहिया वाहन घुमावदार सड़क...	सवालीराम	**160**.86
चालकेवाड़ी पवन ऊर्जा संयंत्र...	किशोर पंवार और श्वेता	**161**.07
मौत के कुएँ में चलते वक्त...	सवालीराम	**161**.79

रसायनशास्त्र (Chemistry)/जैव रसायन

पानी को उबालने पर उसके स्वाद...	सवालीराम	**157**.86
लीमर में मिले प्यार के रसायन	विपुल कीर्ति शर्मा	**158**.05
नमकीन भोजन खाने के बाद...	सवालीराम	**162**.83

वनस्पतिशास्त्र (Botany)

बेल के पौधे और लाइम...: भाग-1	युवान एविस	**159**.05
बेल के पौधे और लाइम...: भाग-2	युवान एविस	**160**.12

प्राणीशास्त्र (Zoology)/माइक्रोबायोलॉजी

यौन-आकर्षण और गन्ध	विपुल कीर्ति शर्मा	**157**.05
पानी को उबालने पर उसके स्वाद...	सवालीराम	**157**.86
लीमर में मिले प्यार के रसायन	विपुल कीर्ति शर्मा	**158**.05
जब कुत्ता पेशाब करता है तो एक...	सवालीराम	**158**.86
बेल के पौधे और लाइम...: भाग-1	युवान एविस	**159**.05
मादाएँ अपने नर पार्टनर में क्या...	विपुल कीर्ति शर्मा	**159**.11

वर्षा होने के तुरन्त बाद मेंढक...	सवालीराम	**159**.83
उभयलिंगी जीव - नर भी और...	विपुल कीर्ति शर्मा	**160**.05
बेल के पौधे और लाइम...: भाग-2	युवान एविस	**160**.12
सर्च फॉर लॉस्ट बड्र्स	संकेत राउत	**161**.04
चालकेवाड़ी पवन ऊर्जा संयंत्र...	किशोर पंवार और श्वेता	**161**.07
तुम सम्भालो मेरे बच्चों को	विपुल कीर्ति शर्मा	**161**.15
गोह का विशाल बिल	कालू राम शर्मा	**161**.89
कोयल के अण्डे, कौओं के घोंसले...	संकेत राउत	**162**.05
नमकीन भोजन खाने के बाद...	सवालीराम	**162**.83
मिट्टी खाकर बिल बनाने...	कालू राम शर्मा	**162**.86

पारिस्थितिकी/पर्यावरण/जैव-विकास/अनुकूलन/प्राणी व्यवहार

यौन-आकर्षण और गन्ध	विपुल कीर्ति शर्मा	**157**.05
लीमर में मिले प्यार के रसायन	विपुल कीर्ति शर्मा	**158**.05
जब कुत्ता पेशाब करता है तो एक...	सवालीराम	**158**.86
बेल के पौधे और लाइम...: भाग-1	युवान एविस	**159**.05
मादाएँ अपने नर पार्टनर में क्या...	विपुल कीर्ति शर्मा	**159**.11
वर्षा होने के तुरन्त बाद मेंढक...	सवालीराम	**159**.83
उभयलिंगी जीव - नर भी और...	विपुल कीर्ति शर्मा	**160**.05
बेल के पौधे और लाइम...: भाग-2	युवान एविस	**160**.12
सर्च फॉर लॉस्ट बड्र्स	संकेत राउत	**161**.04
चालकेवाड़ी पवन ऊर्जा संयंत्र...	किशोर पंवार और श्वेता	**161**.07
तुम सम्भालो मेरे बच्चों को	विपुल कीर्ति शर्मा	**161**.15
गोह का विशाल बिल	कालू राम शर्मा	**161**.89
कोयल के अण्डे, कौओं के घोंसले...	संकेत राउत	**162**.05
मिट्टी खाकर बिल बनाने...	कालू राम शर्मा	**162**.86

गणित

हज़ारों साल की निसर्गशाला	आमोद कारखानीस	**157**.13
कहानी अमूर्त चिन्हों की	आमोद कारखानीस	**158**.10
ईशांगो बोन	आमोद कारखानीस	**159**.22

अँगुलियों की करामात	आमोद कारखानीस	**160**.17
विश्व विजेता दस	आमोद कारखानीस	**161**.25
हिन्दसे...	आमोद कारखानीस	**162**.16
सांख्यिकी की एक महत्वपर्ण...	सुशील जोशी व भास बापट	**162**.21

समाज विज्ञान/भूगोल/इतिहास/नागरिक शास्त्र

हज़ारों साल की निसर्गशाला	आमोद कारखानीस	**157**.13
बिट्टू के. राजारमन के साथ...	ध्रुवी निर्मल और बिट्टू के.	**157**.19
बच्चे, नागरिकता और..: भाग-1	समीना मिश्रा	**157**.59
समय, दूरी और बच्चे: भाग-3	प्रकाश कान्त	**157**.68
कहानी अमूर्त चिन्हों की	आमोद कारखानीस	**158**.10
बच्चे, नागरिकता और..: भाग-2	समीना मिश्रा	**158**.54
बच्चे और एटलस: भाग-4	प्रकाश कान्त	**158**.63
ईशांगो बोन	आमोद कारखानीस	**159**.22
बच्चे और एटलस - 2: भाग-5	प्रकाश कान्त	**159**.54
इतिहासों के अँधेरे-उजले...: भाग-6	प्रकाश कान्त	**160**.60
विश्व विजेता दस	आमोद कारखानीस	**161**.25
साप्ताहिक बाज़ार: दुनियादारी...	अनिल सिंह	**161**.31
स्कूल के ढाँचे में लोकतंत्र के प्रयोग	अमित और जयश्री	**161**.38
बच्चों ने तैयार किया अपने...: भाग-7	प्रकाश कान्त	**161**.63
हिन्दसे...	आमोद कारखानीस	**162**.16
पुराने समय के दो शहर: भाग-8	प्रकाश कान्त	**162**.57

बच्चों/शिक्षकों और समुदाय के साथ अनुभव

शिक्षा की अलख जगाती गोनिया...	प्रियंका कुमारी	**157**.31
कहानियाँ - बच्चों के अन्तर्मन तक...	वरुण गुप्ता	**157**.37
रियाज़ का रहस्य .	गोपाल मिड्ढा	**157**.47
बच्चे, नागरिकता और..: भाग-1	समीना मिश्रा	**157**.59
समय, दूरी और बच्चे: भाग-3	प्रकाश कान्त	**157**.68
एक पाण्टा नाम .	अमित और जयश्री	**158**.27
आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल	अनिल सिंह	**158**.39

पढ़ाई में कैसे मददगार हैं चित्र?	राजेन्द्र देशमुख	**158.**48
बच्चे, नागरिकता और..: भाग-2	समीना मिश्रा	**158.**54
बच्चे और एटलस: भाग-4	प्रकाश कान्त	**158.**63
बच्चों का बैंक	अमित और जयश्री	**159.**37
सुबह की संगीत सभा	अनिल सिंह	**159.**45
बच्चे और एटलस - 2: भाग-5	प्रकाश कान्त	**159.**54
चूहे, दीमक और आधारशिला...	अमित और जयश्री	**160.**39
आनन्द निकेतन बैंक	अनिल सिंह	**160.**53
इतिहासों के अँधेरे-उजले...: भाग-6	प्रकाश कान्त	**160.**60
साप्ताहिक बाज़ार: दुनियादारी...	अनिल सिंह	**161.**31
स्कूल के ढाँचे में लोकतंत्र के प्रयोग	अमित और जयश्री	**161.**38
बच्चों ने तैयार किया अपने...: भाग-7	प्रकाश कान्त	**161.**63
मिट्टी से मिट्टी तक...	अनिल सिंह	**162.**34
नाटक इंडिया कम्पनी...	अमित और जयश्री	**162.**41
पुराने समय के दो शहर: भाग-8	प्रकाश कान्त	**162.**57

समीक्षा/साक्षात्कार/संस्मरण/व्याख्यान

बिट्टू के. राजारमन के साथ...	ध्रुवी निर्मल और बिट्टू के.	**157.**19
तोतिया तीतर	अनिल सिंह	**157.**53
मैं विज्ञान कथाएँ क्यों लिखता हूँ?	जयंत नारलीकर	**159.**29
ग्रीन थाई करी	अस्फिया	**159.**67
अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज	उपासना	**160.**69

भाषा शिक्षण/बाल साहित्य

कहानियाँ - बच्चों के अन्तर्मन तक...	वरुण गुप्ता	**157.**37
तोतिया तीतर	अनिल सिंह	**157.**53
एक पाण्टा नाम .	अमित और जयश्री	**158.**27
अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज	उपासना	**160.**69

विज्ञान शिक्षा/जन विज्ञान

बिट्टू के. राजारमन के साथ...	ध्रुवी निर्मल और बिट्टू के.	**157.**19

रियाज़ का रहस्य	गोपाल मिड्ढा	**157**.47
झगड़ी...	संजय कुमार तिवारी	**161**.61

वैकल्पिक शालाएँ/शिक्षा में नवाचार

एक पाण्टा नाम .	अमित और जयश्री	**158**.27
आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल	अनिल सिंह	**158**.39
बच्चों का बैंक	अमित और जयश्री	**159**.37
सुबह की संगीत सभा	अनिल सिंह	**159**.45
चूहे, दीमक और आधारशिला...	अमित और जयश्री	**160**.39
आनन्द निकेतन बैंक	अनिल सिंह	**160**.53
साप्ताहिक बाज़ार: दुनियादारी...	अनिल सिंह	**161**.31
स्कूल के ढाँचे में लोकतंत्र के प्रयोग	अमित और जयश्री	**161**.38
मिट्टी से मिट्टी तक...	अनिल सिंह	**162**.34
नाटक इंडिया कम्पनी...	अमित और जयश्री	**162**.41

कहानी

दाईं सूँड के गणेशजी: भाग-1	जयंत विष्णु नारलीकर	**157**.76
दाईं सूँड के गणेशजी: भाग-2	जयंत विष्णु नारलीकर	**158**.74
व्हाइट नॉइज़	डॉन देलाइलो	**159**.79
पुराने पेड़ की बातें	शरद जोशी	**160**.79
मंतोड़ा	श्रेया खेमानी	**161**.71
ईश्वर की कहानियाँ	विष्णु नागर	**162**.64
आलू की आँख: भाग-1	राजेश जोशी	**162**.66

सवालीराम

पानी को उबालने पर उसके स्वाद...	सवालीराम	**157**.86
जब कुत्ता पेशाब करता है तो एक...	सवालीराम	**158**.86
वर्षा होने के तुरन्त बाद मेंढक...	सवालीराम	**159**.83
दोपहिया वाहन घुमावदार सड़क...	सवालीराम	**160**.86
मौत के कुएँ में चलते वक्त...	सवालीराम	**161**.79
नमकीन भोजन खाने के बाद...	सवालीराम	**162**.83

सवालीराम

सवाल: नमकीन भोजन खाने के बाद हमें ज़्यादा प्यास क्यों लगती है?

– रुद्राक्ष मिश्रा, कक्षा-9, भोपाल, म.प्र.

जवाब: सवाल यह है कि नमक खाने से ज़्यादा प्यास क्यों लगती है। सवाल के पीछे शायद पूछने वाले का अनुभव छिपा है। लेकिन नमक और प्यास का सम्बन्ध जितना सीधा लगता है, उतना है नहीं।

पहले देखते हैं कि प्यास लगती ही क्यों है और यह कैसे हमें मदद करती है। दरअसल, हमारे शरीर में एक व्यवस्था है जो हमारी बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति का खयाल रखती है। प्यास को बुझाना इनमें से एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था की एक खासियत है कि इसके साथ ही पारितोषिक तंत्र जुड़ा होता है। पारितोषिक तंत्र यानी रिवॉर्ड सिस्टम। यह मस्तिष्क में एक आनन्द की अनुभूति कराने की व्यवस्था है। दिमाग में मौजूद प्यास तंत्रिका हमारे शरीर को एक स्पष्ट संकेत प्रेषित करती है - सूखा गला, और हलक के पिछले हिस्से में खराश जैसी संवेदना। इस संवेदना का मकसद यह है कि आप पानी पीएँ और खून का आयतन और उसमें लवणों की सान्द्रता सही स्तर पर पहुँच जाएँ। पारितोषिक तंत्र पानी पीने पर एक आनन्द की अनुभूति देता है।

यदि खून में नमक की सान्द्रता सामान्य से ज़्यादा हो जाए, तो प्यास की अनुभूति होती है। यही अनुभूति तब भी होती है जब रक्त प्लाज़्मा के

आयतन में कमी हो जाए। कहने का मतलब है कि खून के कुल आयतन में कमी होने पर भी प्यास की अनुभूति होती है।

प्यास की अनुभूति प्लाज़्मा में सोडियम की सान्द्रता के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होती है। यह सान्द्रता महज़ 2-3 प्रतिशत बढ़ने पर प्यास की अनुभूति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन यदि लवण की सान्द्रता में परिवर्तन न हो तो प्लाज़्मा के आयतन में काफी कमी (लगभग 10 प्रतिशत) होने के बाद ही प्यास लगती है।

तो इस अनुभूति का नियंत्रण कैसे होता है? दरअसल, प्यास तथा सोडियम की चाहत के नियंत्रण हेतु कई सारे तंत्र मिलकर काम करते हैं। ये तंत्र दो बातों की निगरानी करके प्रतिक्रिया देते हैं। पहला है, शरीर की कोशिकाओं के अन्दर और कोशिकाओं के बाहर द्रव की मात्रा। दूसरा है, प्लाज़्मा में सोडियम की सान्द्रता (यह मूलत: रक्त में सोडियम की सान्द्रता से निर्धारित होती है)। प्लाज़्मा की सान्द्रता में वृद्धि, प्यास लगने के लिए सबसे सशक्त उद्दीपन होती है। मात्र 2-3 प्रतिशत की वृद्धि ही प्यास जगाने के लिए पर्याप्त होती है। यहाँ यह याद रखना ज़रूरी है कि नमक खाते ही प्लाज़्मा की सान्द्रता में वृद्धि नहीं होती, कुछ समय लग जाता है इस प्रक्रिया में।

कुल मिलाकर, कहा जा सकता है कि प्यास की अनुभूति का सम्बन्ध खून के आयतन और उसमें सोडियम की सान्द्रता से है। इन दोनों चीज़ों पर निगरानी के लिए शरीर में व्यवस्था है। इस सम्बन्ध में 1940 के दशक में किए गए प्रयोग में धमनियों के ज़रिए सीधे कुत्तों के मस्तिष्क में कम सान्द्रता वाला नमक का घोल (सैलाइन) इंजेक्ट किया गया। शोधकर्ताओं ने पाया कि इसके तत्काल बाद उन कुत्तों में मूत्र प्रवाह कम हो गया था। शोधकर्ताओं का निष्कर्ष था कि कुछ मस्तिष्क कोशिकाएँ रक्त में सोडियम की सान्द्रता में परिवर्तन का पता लगाने के लिए रिसेप्टर्स के रूप में कार्य करती हैं। सबसे पहले ऑस्मो-रिसेप्टर की पहचान इसी प्रयोग से हुई थी।

इसके बाद यह भी समझ में आया था कि हायपोथैलेमस का अगला हिस्सा प्यास और पानी पीने के व्यवहार को नियंत्रित करता है। इसके अलावा, हृदय की मुख्य शिराओं (महाशिराओं) में तथा एट्रियम में कुछ तंत्रिकाएँ होती हैं जो रक्त के आयतन और सान्द्रता की निगरानी करती हैं। ये रिसेप्टर्स कुछ अन्य तंत्रिकाओं के माध्यम से हॉरमोन्स का स्रवण करवाते हैं – एक होता है जो गुर्दों को पानी रोके रखने का संकेत देता है और दूसरा, प्यास की अनुभूति के लिए ज़िम्मेदार होता है।

पानी का पहला घूँट हलक में उतरते ही एक सन्तुष्टि का एहसास

होता है क्योंकि ऐसा होते ही दिमाग में डोपामाइन का सैलाब आता है। डोपामाइन एक तंत्रिका-सम्प्रेषण रसायन है जो अच्छा महसूस कराने का काम करता है। सन्तुष्टि का एहसास पानी गटकते ही महसूस होता है, हालाँकि खून पतला होने की शुरुआत पानी पीने के 15-30 मिनट बाद होती है।

लेकिन क्या नमक खाने और तत्काल प्यास लगने के बीच कोई सम्बन्ध है? कई शोधकर्ताओं ने इसकी जाँच भी की है। जाँच के आगे यह धारणा बिखरती-सी लगती है।

नमक और प्यास की कड़ी को लेकर कुछ प्रयोग भी किए गए हैं। जैसे एक प्रयोग में देखा गया कि जब पुरुषों ने 3.5-4.4 ग्राम और महिलाओं ने 1.9-3.7 ग्राम नमक का सेवन किया तो अगले दो घण्टों में प्यास में कोई वृद्धि नहीं हुई थी। यह नमक उन्हें नमकीन मूंगफली वगैरह के रूप में खिलाया गया था। गौरतलब है कि इन लोगों को पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था जिसे वे जब चाहे, पी सकते थे।

एक प्रयोग ऐसा भी हुआ था जिसमें मंगल ग्रह जैसी परिस्थितियाँ निर्मित करके देखने की कोशिश की गई थी कि क्या नमक सेवन की मात्रा का असर पानी पीने की मात्रा पर होता है। यह प्रयोग जर्मन एयरोस्पेस सेंटर, डेलब्रुक सेंटर फॉर मॉलीक्यूलर मेडिसिन तथा अन्य संगठनों ने मिलकर किया था। आश्चर्यजनक रूप से उच्च लवण का सेवन करने वाले सहभागियों ने न सिर्फ कम पानी पिया था बल्कि उन्होंने ज़्यादा पानी का उत्पादन (मूत्र तथा अन्य तरह से) किया था और ज़्यादा भूख महसूस की थी।

इस चर्चा से तो लगता है कि नमक खाने से तत्काल प्यास नहीं लगती। और प्यास बुझने का तत्काल सम्बन्ध खून के पतला होने से नहीं है। प्यास एक अनुभूति है जो हमें शरीर में तरल का महत्वपूर्ण सन्तुलन बनाए रखने में मदद करती है।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

— — — — — —

इस बार का सवाल: दुकानों के सामने नींबू-मिर्च क्यों लटकाया जाता है?

- कृतिका, कक्षा-3, उज्जैन, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

मिट्टी खाकर बिल बनाने वाला केंचुआ

कालू राम शर्मा

एक दिन मैं गमले में मिट्टी भरकर पौधा लगाने जा रहा था कि मुझे एक केंचुआ दिखाई दिया। वह कुलबुलाने लगा, मानो उसे रोशनी पसन्द न हो। थोड़ी ही देर में वह मिट्टी के भीतर घुस गया। मैंने फिर से गमले की मिट्टी उथल-पुथल की। इस बार भी वह अपने नाज़ुक, लसलसे शरीर को कुण्डलीनुमा बनाकर सिर के बल मिट्टी में समा गया। मैं सोचने लगा, आखिर वह ऐसा क्यों करता है?

केंचुए के बिल

केंचुए कहाँ रहते हैं? इसका आसान-सा जवाब है – मिट्टी में। मिट्टी के बिना उनका जीवन सम्भव ही नहीं है। केंचुए ऐसी मिट्टी में रहते हैं जहाँ पत्तियाँ सड़-गल रही हों। वे मिट्टी के भीतर बिल बनाते हैं लेकिन उनका बिल चूहे या चींटी के बिल जैसा नहीं होता। केंचुए के पास न तो मज़बूत दाँत होते हैं और न ही नुकीले पंजे, फिर भी वे बिल कैसे बना लेते हैं?

दरअसल, केंचुआ जहाँ से बिल बनाना शुरू करता है, वहीं से मिट्टी को खाना भी शुरू कर देता है। वह सामने आने वाली मिट्टी को खाते हुए नीचे की ओर बढ़ता जाता है।

इस तरह एक नरम और लचीली नली जैसी सुरंग बनती जाती है। जैसे अगर हम कोई नरम नली मिट्टी में घुसाएँ, तो उसके भीतर मिट्टी भरती चली जाती है – कुछ ऐसा ही केंचुए के साथ भी होता है। यानी एक-साथ दो काम – रास्ते की मिट्टी खाते जाना और बिल बनाते जाना।

जब मिट्टी के ऊपर नमी अधिक होती है, तो केंचुए के बिल उथले होते हैं। लेकिन जैसे-जैसे धूप और हवा की वजह से मिट्टी सूखने लगती है और नमी कम होती जाती है, वैसे-वैसे केंचुए और गहराई में घुसते चले जाते हैं। उनका बिल लगभग साढ़े छह फीट तक गहरा हो सकता है। सोचिए, एक नरम-सा केंचुआ कितना गहरा बिल बना लेता है!

आम तौर पर केंचुए दिन में अपने बिलों के अन्दर ही रहते हैं। वे रात में ही सड़ी-गली पत्तियाँ खाने के लिए बाहर निकलते हैं और फिर वापस बिल में चले जाते हैं। लेकिन घनघोर बरसात में, जब ज़मीन में पानी भर जाता है, तो वे दिन में भी बाहर रेंगते हुए दिखाई दे सकते हैं। जैसे ही उन्हें कोई नम ज़मीन मिलती है, वे तुरन्त फिर से उसके अन्दर घुस जाते हैं।

प्रकृति का हलवाहा

केंचुए का बिल बनाना किसानों के लिए गज़ब का वरदान है। इससे मिट्टी भुरभुरी और छेददार हो जाती है। जितनी हवा मिट्टी के अन्दर जाएगी, मिट्टी की सेहत उतनी ही बेहतर होगी। केंचुआ जिस मिट्टी को खाता है, उसमें से सड़े-गले कण पचा लेता है और बाकी मिट्टी को विष्ठा के रूप में बाहर निकाल देता है। केंचुए की यह विष्ठा सेंवई जैसी दिखाई देती है और इससे मिट्टी और भी ज़्यादा भुरभुरी व उपजाऊ बन जाती है।

प्रख्यात चार्ल्स डार्विन ने केंचुओं को 'प्रकृति के हलवाहे' कहा था। एक एकड़ ज़मीन में लगभग 10,000 तक केंचुए हो सकते हैं। ये सब मिलकर एक साल में करीब 14–15 टन मिट्टी को उलट-पलट देते हैं, जिससे ज़मीन अधिक उपजाऊ बन जाती है।

कुछ विशेषताएँ

केंचुओं के पास आँखें नहीं होतीं। वे अपनी त्वचा से ही प्रकाश का आभास करते हैं और साँस भी त्वचा से ही लेते हैं। इसलिए उनकी त्वचा का नम रहना बहुत ज़रूरी होता है। अगर त्वचा सूख जाए, तो उन्हें साँस लेने में दिक्कत होने लगती है। इसी वजह से केंचुए धूप से बचते हैं और नम, अँधेरी जगहों में रहना पसन्द करते हैं।

जब बहुत ज़्यादा बारिश होती है और ज़मीन के अन्दर पानी भर जाता है, तो भी केंचुओं को साँस लेने में दिक्कत होने लगती है। इसलिए बारिश में वे दिन में भी बाहर निकल

आते हैं और ऐसी जगह ढूँढते हैं जहाँ वे फिर से ज़मीन के अन्दर घुस सकें।

दुनिया में केंचुओं की हज़ारों प्रजातियाँ पाई जाती हैं। कुछ केंचुए ज़मीन की ऊपरी सतह के पास रहते हैं, कुछ गहराई में सुरंग बनाते हैं और कुछ सड़ी-गली पत्तियों की परत में ही अपना जीवन बिताते हैं। खेतों और बाग-बगीचों में मिलने वाले केंचुए मिट्टी को उपजाऊ बनाने में सबसे ज़्यादा मदद करते हैं।

केंचुए के शरीर में नर और मादा, दोनों अंग मौजूद होते हैं। जोड़ी बनाते समय वे एक-दूसरे के साथ शुक्राणु का आदान-प्रदान करते हैं, जिससे अण्डे निषेचित हो जाते हैं। बाद में केंचुआ बिल में अण्डे दे देता है। इन अण्डों को 'ककून' कहा जाता है। लगभग तीन हफ्तों में ककून से शिशु केंचुआ बाहर निकल आता है।

केंचुए की एक और रोचक बात यह है कि अगर कभी इसका शरीर दो हिस्सों में कट जाए, तो कई बार आगे वाला हिस्सा ज़िन्दा रह सकता है और धीरे-धीरे पिछला हिस्सा फिर से बना लेता है। हालाँकि, यह हर बार नहीं होता और यह केंचुए की प्रजाति और चोट की जगह पर भी निर्भर करता है।

चूँकि केंचुए कई जीवों का भोजन भी होते हैं, जैसे पक्षी, मेंढक और कुछ छिपकलियाँ इसलिए वे प्रकृति की खाद्य-शृंखला का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

यह उनकी अप्रकाशित रचना है।

केंचुओं पर *संदर्भ* में प्रकाशित अन्य लेख पढ़िए- तौबा ये मतवाली चाल (अंक-19, सितम्बर-अक्टूबर, 1997), केंचुए में प्रजनन (अंक-24-25, जुलाई-अक्टूबर, 1998), जीवजगत में उभयलिंगता (अंक-76, जुलाई-अगस्त, 2011), उभयलिंगी जीव - नर भी और मादा भी (अंक-160, सितम्बर-अक्टूबर, 2025)।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, दुलदुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।